मास्टर ऑफ आर्ट्स (शिक्षाशास्त्र)

एम.ए. (शिक्षाशास्त्र)

प्रथम वर्ष

शिक्षा के दार्शनिक आधार

(Philosophical Foundation of Education)

(प्रथम प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट [सतना] म.प्र. - ४८५३३४

शिक्षा के दार्शनिक आधार
Philosophical Foundations of Education

ई–संस्करण 2023–24 / M.A. Education –I - 20

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :

प्रो. भरत मिश्र

कुलपति

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

पाठ्यक्रम निर्माण

उदय काल भंवर

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. योगेश कुमार सिंह

पाठ्यक्रम अभिकल्पना एवं सम्पादक मण्डल :

डॉ. कमलेश थापक डॉ. श्याम सिंह गौर

डॉ. आशा शर्मा डॉ. नीलम चौरे

मुद्रण प्रस्तुति

डॉ. सन्तोष अरसिया, उपकुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

सन्तोष राजपूत, सहायक कुलसचिव (दूरवर्ती परीक्षा)

शिवांगी त्रिपाठी

सम्पर्क सूत्र :

डॉ. कमलेश थापक, निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

दूरभाष– 07670–265460, E-mail – directordistancemgcgv@gmail.com, website : www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत् शिक्षा केन्द्र

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

प्राक्कथन...

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की तपोस्थली, मंदाकिनी नदी के सुरम्य तट पर स्थापित महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय भारतरत्न नानाजी देशमुख के शैक्षिक चिंतन और संकल्पों की जीवंत अभिव्यक्ति है, जो म.प्र.शासन द्वारा 12 फरवरी, 1991 को विशेष अधिनियम 09, 1991 द्वारा स्थापित हुआ।

विश्वविद्यालय का ध्येय वाक्य है—'विश्वं ग्रामे प्रतिष्ठितम्' अर्थात ग्राम विश्व का लघु रूप है। विश्वविद्यालय चित्रकूट में स्थित है, जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। नई पीढ़ी के लिये यह स्थान आदर्श एवं प्रेरणा का केन्द्र है।

विश्वविद्यालय में कृषि, प्रबंधन, अभियांत्रिकी, लोक विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं स्थानीय स्वशासन, लोक शिक्षा, कला, संस्कृति एवं साहित्य सहित सभी अकादमिक धारायें प्रभावी रूप में उपस्थित हैं। विश्वविद्यालय, ग्राम को समाज जीवन की मूल इकाई मानकर शिक्षण, प्रशिक्षण, शोध और प्रसार कार्यों से सर्वांगीण विकास के लिए विगत 3 दशकों से अधिक समय से समर्पित प्रयास कर ग्रामोदय से राष्ट्रोदय के संकल्प में लगा हुआ है। विश्वविद्यालय ने अपनी गतिविधियों और कार्यक्रमों के माध्यम से कौशल विकास के उन्नयन एवं प्रमाणन तथा सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है तथा शासन के सहयोगी के रूप में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान की परम्परा के आलोक में आई, राष्ट्रीय शिक्षा नीति—2020 चिरवांछित जन आकांक्षाओं की सम्यक् अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के युगान्तरकारी प्रावधानों को लागू करने में मध्यप्रदेश अग्रणी राज्य रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने नवाचारों के लिए सकारात्मक और अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया है। विद्यार्थियों की पठन—पाठन की स्वतंत्रता, कौशल विकास के समुचित अवसर तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार आने वाले भविष्य के लिए तैयार करने की प्रतिबद्धता राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों में स्पष्टतः दिखाई देती है।

विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रावधानों को दूरवर्ती के विभिन्न पाठ्यक्रमों में अर्थपूर्ण रूप से जोड़कर इन्हें सत्र 2023—24 से पुनः संशोधित/परिवर्धित रूप में प्रारम्भ किया है। विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा के प्रसार एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने हेतु दूरवर्ती माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष प्रयास कर रहा है। दूरवर्ती पद्धति से संचालित विभिन्न पाठ्यक्रमों में नियमित संपर्क कक्षाओं के आयोजन, उच्च शिक्षा की स्व—अध्ययन सामग्री एवं नई शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शिक्षार्थी को बेहतर शैक्षणिक अनुभव प्रदान करने की व्यवस्था सुनिश्चत की जा रही है।

विश्वविद्यालय के दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र द्वारा सत्र 2024—25 में संचालित परास्नातक, स्नातक तथा डिप्लोमा स्तरीय दूरवर्ती पाठ्यक्रमों के शिक्षार्थियों हेतु ई—स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करते हुये मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है।
पाठ्यक्रम से जुडे सभी शिक्षार्थियों, अभिभावकों, प्रशासकों, समन्वयकों और अन्य सभी को मेरी मंगलकामनायें

प्रो. भरत मिश्रा
कुलपति

यूनिट–प्रथम

शिक्षा और दर्शन

शिक्षा का अर्थ :–

शिक्षा की परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से की गई है। ये परिभाषाएँ उनके प्रतिपादकों के व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर आधारित है। अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा शिक्षा के अलग–अलग अर्थ लगाये जाते है। ऐसी दशा मे यह अत्यंत कठिन है कि हम शिक्षा की कोई एक विशिष्ट परिभाषा दे सके या, 'शिक्षा' शब्द को कोई निश्चित अर्थ दे सके। शिक्षा का अंग्रेजी प्रयोग एजूकेशन, लेटिन भाषा के एजूकेटम (Educatum) या एजुकेयर (Educare) से निकला है। शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्ष', धातु से बना है जिसका अर्थ सीखना है और सिखाना है।

हिन्दी और अंग्रेजी दोनों के अर्थो के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास किया जाता है।

शिक्षा की परिभाषा

1. महात्मा गाधी :– शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जो बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वोत्कृष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दे।

2. काण्ट :– व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास, जिस पर वह पहुँचा सकता है उसे शिक्षा कहते हैं।

3. स्वामी विवेकानंद :– व्याक्ति के अंदर निहित पूर्णता का उद्घाटन ही शिक्षा है।

4. अरस्तु :– स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मस्तिष्क की रचना ही शिक्षा है।

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा एक प्रक्रिया हैं। इसमे बालक के सर्वांगीण विकास का भाव निहित हैं।

शिक्षा के कार्य :–

शिक्षा के निम्नलिखित कार्य महत्वपूर्ण माने गये हैं–

1. व्यक्तित्व का संतुलित विकास
2. अर्न्तनिहित शक्तियो का विकास
3. व्यस्क जीवन की तैयारी
4. अच्छे नागरिक का निर्माण
5. चरित्र निर्माण

6. राजनीतिक सुरक्षा

7. सामाजिक भावना का विकास

शिक्षा के विभिन्न रूप

1. औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा : बालक चार दिवारी की अपेक्षा उन्मुक्त वातावरण से अधिक अनुभव अर्जित करता है। शाला मे छात्र सीमित समय तक ही रहता है और कम शिक्षण प्राप्त करता है। वह विद्यालय से बाहर अधिक शिक्षण प्राप्त करता है। अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा प्राप्त की हुई शिक्षा प्रायः स्थायी होती है। इसका समय व स्थान निश्चित नही होता है। इसके न तो कोई उद्देश्य होते है और न ही कोई व्यवस्था होती है। इसके अंर्तगत परिवार समाज तथा समुदाय आता है।

शिक्षा के औपचारिक साधन मे जानबूझकर एव सोच विचारकर निश्चित समय पर निश्चित पाठ्यक्रम व उद्देश्य की शिक्षा प्रदान करना है।

2. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष शिक्षा : प्रत्यक्ष शिक्षा से तात्पर्य शिक्षक व छात्र के मध्य सीधे सम्पर्क से है। किंतु अप्रत्यक्ष शिक्षा मे सीधा सम्पर्क नही होता है।

3. वैयक्तिक एवं सामूहिक शिक्षा : एक अध्यापक द्वारा एक ही बालक को शिक्षा देना वैयक्तिक शिक्षा कहलाती है। किन्तु एक अध्यापक द्वारा समूह कोएक साथ शिक्षा देना सामूहिक शिक्षा है।

4. सामान्य और विशिष्ट शिक्षा : सामान्य जीवन के लिये दी जाने वाली शिक्षा सामान्य शिक्षा कहलाती है जबकि किसी निश्चित व्यवसाय को ध्यान में रखकर दी जाने वाली शिक्षा विशिष्ट शिक्षा कहलाती है।

शिक्षा के स्रोत

शिक्षा के अनेक स्रोत है जिनमें से चार प्रमुख स्रोत है ये निम्नलिखित है।

1. परिवार : बालक की प्रारंभिक पाठशाला उसका परिवार होता हैं। यही पर उसे संस्कार दिये जाते है। बालक के संतुलित व्यक्तित्व विकास के लिये घर का वातावरण संतुलित होना अति आवश्यक है।

2. पाठशाला : घर के पश्चात् बालक की दूसरी पाठशाला उसका विद्यालय है। बालक विद्यालय मे अपने व्यक्तिव्व का विकास करता है।

3. समाज : बालक के आसपास का वातावरण उसका तीसरा विद्यालय है। वह समाज में अन्य व्यक्तियों के सम्पक्र मे आकार अनेक गातिविधियाँ सीखता है।

4 राज्य : शिक्षा का अन्य महत्वपूर्ण साधन राज्य है जो अपने नागरिकों को शिक्षित करता है वह नागरिकों मे राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदि भावना के विकास के लिये कार्यक्रम व योजनाएँ तैयार करता है।

<u>दर्शन</u>

प्रत्येक मनुष्य का अपना दर्शन होता है। दर्शन प्रत्येक मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ होता है। मनुष्य जाति का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह इस जीवन संग्राम में सफल हो इसके लिये वह विभिन्न तरह से संघर्ष करता है। दर्शन का अर्थ अत्यंत व्यापक है एवं इसका क्षेत्र भी अत्यंत व्यापक है।

<u>दर्शन की परिभाषा</u> :–

1. **हरबर्ट स्पेन्सर** :– दर्शन एक सार्वभौमिक विज्ञान के रूप मे प्रत्येक से संबधित है।

2. **सैलर्स** :– दर्शन शास्त्र एक ऐसा अनवरत प्रयत्न है जिसके द्वारा मनुष्य संसार तथा अपनी प्रकृति के संबंध मे क्रमबद्ध ज्ञान द्वारा एक अर्न्तदृष्टि प्रदान करने की चेष्टा करता है।

3. **बरट्रेण्ड रसल** : अन्य विज्ञानों के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है।

अतः हम कह सकते है कि दर्शन ईश्वर का स्वरूप, जीव का उससे संबंध, संसार की व्याख्या तथा आत्मा के रहस्य के संबंध में विचार करता है।

<u>दर्शन का अर्थ</u> :–

भारतीय दृष्टिकोण से राधाकृष्णन् के अनुसार दर्शन शब्द की उत्पत्ति 'दृश' धातु से हुई है। जिसका अर्थ 'देखना' है। दर्शन का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य एवं उसकी उत्पत्ति के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देना है। जैसे संसार क्या है. ईश्वर का स्वरूप क्या है, आत्मा क्या है। मै कौन हूँ आदि। पाश्चात्य दृष्टिकोण से से – पाश्चात्य विचारधारा में इसको फिलॉस्फी (Philosophy) के नाम से पुकारा जाता है। यह शब्द दो ग्रीक शब्दो के संयोग से बना है। फिलॉस या फिलियो जिसका अर्थ है। प्रेम या अनुराग तथा सोफिया का अर्थ है ज्ञान या विद्या। अतः इस शब्द फिलॉस्फी का अर्थ है विद्यानुरागी या ज्ञान से प्रेम।

<u>दर्शन की प्रकृति</u> :–

दर्शन की प्रकृति दार्शनिक मानी जाती है। दर्शन की प्रकृति जानने के लिये निम्नलिखित बाते जानना आवश्यक हैं।

1. **<u>दार्शनिक समस्याएँ</u>** :– प्राचीन काल मे दर्शन आश्चर्य से शुरू हुआ। परंतु वर्तमान समय में इसकी उत्पत्ति सदेह में देखने को मिलती है। जिसके कारण से इसमे विभिन्न प्रकार की समास्याओ को जन्म मिलता है। एवं विभिन्न प्रश्न उठते है। जैसे–ज्ञान क्या है? संसार का निर्माणकर्ता कौन है? भगवान क्या है? मैं इस संसार मे क्यो आया? आदि।

2. **<u>दार्शनिक दृष्टिकोण</u>** :– यदि कोई भी व्यक्ति सुख व दुःख की स्थिति मे समभाव रखता है। अर्थात् सुख की स्थिति मे अधिक प्रसन्न नही रहता है एवं दुःख के समय भी ज्यादा परेशान व चिंतित नही रहता हैं। तो ऐसा कहा जाता है कि उस व्यक्ति कि दृष्टिकोण दार्शनिक हैं।

3. <u>दार्शनिक विधि</u> :– दार्शनिकों द्वारा अपनी समस्या सुलझाने के लिये निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग में लाते है।

1. आगमन विधि
2. निगमन विधि
3. द्वंद्वालक विधि
4. विश्लेषणात्मक विधि
5. संश्लेषणात्मक विधि

4. <u>दार्शनिक क्रिया</u> :– दर्शन की क्रिया दार्शनिक चितंन है। यह चितंन संर्वागीण होता हैं। यह वैयक्तिक एवं सामूहिक, एकांत तथा सामाजिक दोनों ही परिस्थितियों मे किया जाता है।

<u>शिक्षा और दर्शन</u>

शिक्षा और दर्शन मे घनिष्ठ सम्बंध हैं। क्योकि शिक्षा के निश्चित उद्देश्य होते है। और उद्देश्य दर्शन की सहायता से विकसित किये जाते है। दर्शन का कार्य निहित सत्य पर प्रकाश डालना है। सत्य का ज्ञान हो जाने पर व्यक्ति समस्या को हल कर लेता है। लेकिन शिक्षा के अभाव मे व्यक्ति दर्शन को नही समझ पाता है। दर्शन मे ऐसी समास्याओं पर प्रकाश डाला जाता है जो जीवन का आधार है। जैसे संसार क्या है? व्यक्ति क्या है? ईश्वर क्या है? आदि। इसी प्रकार शिक्षा का दर्शन शिक्षा संबंधी अंतिम प्रश्नों का उत्तर ढूँढता है। शिक्षा का दर्शन ऐसे प्रश्नों से संबंधित है जैसे शिक्षा क्या है? इसके उद्देश्य क्या है? आदि। दर्शन मानव की, समाज की तथा संसार की प्रकृति के संबंध मे सिद्धान्तों को स्थापित करता है। शिक्षा दर्शन इस प्रकार के स्थापित सिद्धान्तो का प्रयोग शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण समास्याओं के हल मे करता है जैसे मानव की प्रकृति संबंधी सिद्धान्तो का प्रयोग शिक्षा की रूप रेखा निर्धारित करने में किया जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि दर्शन मे विचारों की प्रधानता है और शिक्षा मे कार्य प्रणाली की। यदि दर्शन साध्य है तो शिक्षा साधन है।

1. <u>शैक्षिक सिद्धान्तो</u> :– प्रत्येक जीवन दर्शन एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है। यदि विश्वास जीवन के लिये उपयोगी है तो उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होना चाहिए। अतः दर्शन को शिक्षा से अलग नही किया जा सकता है।

2. <u>दर्शन द्वारा जीवन में शिक्षा :–</u> के महत्व की खोज :– दर्शन हमारे शैक्षिक अनुभवों को उसी रूप मे स्वीकार करता है, जिस रूप मे वे होते हैं। यह जीवन में शिक्षा के महत्व की खोज करता है। उसी प्रकार शिक्षा का भी दर्शन है। जिस प्रकार दर्शन के तथ्य है, उसी प्रकार शिक्षा के भी तथ्य है। इन सभी तथ्यों का हमारे जीवन से घनिष्ठ संबंध है।

3. **दर्शन व शिक्षा** :– शिक्षा और दर्शन का संबंध अत्यंत घनिष्ठ हैं। क्योंकि दर्शन और शिक्षा एक सिक्के के दो पहलुओं के समान है एक मे दुसरा समाहित है शिक्षा जीवन का क्रियात्मक पक्ष है एवं दर्शन इसका विचारात्मक पक्ष है।

4. **दर्शन और शिक्षा की पारस्परिक निर्भरता** :– दर्शन व शिक्षा मे घनिष्ट सम्बंध होने के साथ–साथ पारस्परिक निर्भरता भी पायी जाती है। दर्शन शिक्षा को प्रभावित करता है और शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोण पर नियंत्रण रखती है। इसी कारण से विश्व के सभी महान शिक्षा शास्त्री महान दार्शनिक हुए हैं।

फिक्टे ने कहा है कि दर्शन शास्त्र की सहायता के बिना शिक्षा पूर्णता और स्पष्टता को प्राप्त नही कर सकती।

पोर्टरिज के अनुसार जिस प्रकार शिक्षा दर्शन पर आधारित है, उसी प्रकार दर्शन शिक्षा पर आधारित है।

अर्थात् शिक्षा के उद्देश्य, पठन विधियाँ अनुशासन बालक का स्थान, अध्यापक का स्थान आदि का निर्धारिण उस समाज मे विद्यमान दर्शन द्वारा होता हैं। उसी प्रकार शिक्षा भी विद्यमान दर्शन को परिवर्तित करने में अपनी भूमिका अदा करती है।

दर्शन शास्त्र व शिक्षा के संबंध की चर्चा जेण्टाइल ने दूसरे दृष्टिकोण से की है। उसके अनुसार "दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा सही मार्ग का अनुगमन नही कर सकती है।

5. **सभी दार्शनिक शिक्षक भी हुये** :– प्राचीन काल से ही सुकरात, प्लेटो अरस्तू जैसे दार्शनिक एवम् शिक्षक थे। आधुनिक काल मे पाश्चात्य शिक्षा शास्त्री –सो, स्पेन्सर, डीवी और भारत मे गाँधी, टेगोर, विवेकनन्द भी दार्शनिक थे।

6. **दर्शन शिक्षा का मार्ग दर्शक है** :– दर्शन ने शिक्षा के उदृश्यो, पाठ्यक्रम शिक्षण विधियो, आदि के अपनाने दर्शन का प्रमुख योगदान है।

7. **दर्शन वह शिक्षा के उद्देश्य** :– दर्शन काल परिस्थितियों के अनुकूल ही शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करता है जैसे स्वतन्त्र भारत मे शैक्षिक उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक शासन के अनुकूल विकसित है।

8. **दर्शन और अनुशासन** :– अनुशासक के तीन रूप बताये गये हैदमनात्मक अनुशासन, प्रभावात्मक अनुशासन, मुक्तात्मक अनुशासन अनुशासन के तीनो रूप प्रभाववादी दर्शन या भुक्तवादी दर्शन से प्रभावित हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि शिक्षा और दर्शन मे घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात दर्शन और शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू है जो एक ही वस्तु के दो दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं और दोनो एवं दूसरे पर निर्भर हैं।

यूनिट–द्वितीय

भारतीय दर्शन

सांख्य दर्शन :–

यह सबसे प्राचीन दर्शन है। इसके प्राचीन होने का प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि इसका वर्णन हमे संस्कृति, श्रुति व पुराण मे मिलता है। सांख्य दर्शन सांख्य प्रवचन नाम से भी प्रसिद्ध हैं। सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल थे। इन्होने ईश्वरवाद की स्थापना नही की अर्थात् उनका विचार था। कि ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नही किया जा सकता हैं। इसी कारण कपिल ने सांख्य को 'निरीश्वर सांख्य' भी कहा है। कपिल ने तत्वसमाज एवं 'सांख्य सूत्र' नाम विशद ग्रंथो की भी रचना की। सांख्य के समझ योगदर्शन ने ईश्वर के अस्तित्व के सबंधं मे अपने विचारों का प्रतिपादन किया अतः 'सेश्वर सांख्य' कहते है

'सांख्य' नाम की उत्पत्ति कैसे हुई, इसके संबंध मे विद्वानों की है कि सांख्य का बोध कराता है। चूंकि इस दर्शन मे तत्वों की संख्य निधारित की गई है। इस कारण इसे सांख्य कहा गया है। श्री भागवत मे इसको तत्व गणक भी कहा गया है। एक विचारधारा यह भी मानती है कि सांख्य का अर्थ सम्यक् ज्ञान और इसी अर्थ में यह दर्शन सांख्य दर्शन कहा जाता है।

महाभारत में इस इसी अर्थ मे प्रयोग किया गया है। यह दर्शन सैद्धांतिकमहाभारत तत्वज्ञान का चर्चा करता है व इसका परस्पर सहयोगी योगदर्शन इस बात की विवेचना करता है कि वास्तव मे तत्वज्ञान को कैसें प्राप्त किया जा सकता है। सांख्य दर्शन द्वितत्व को भी प्रस्तुत करता हैं। इस द्वितत्व में वह प्रकृति तथा पुरुष का द्वैत प्रतिपादित करता है यथा–

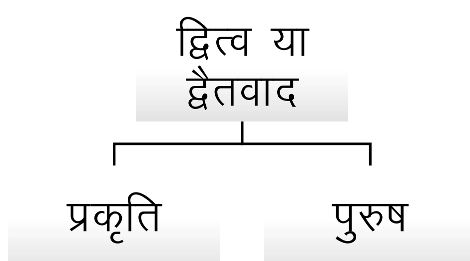

सांख्य दर्शन के सिद्धांत :–

1. **सत्यकार्यवाद** :– सांख्य यह मानता है कि जगत का मूल प्रकृति से विकास हुआ है परंतु मुख्य प्रश्न यह है कि कार्य की सत्ता उसकी उत्पत्ति के पूर्व कारण में रहती है या नही। न्याय वैशेविक और बौद्ध दर्शन उत्तर देते है–नहीं। इनका मानना है कि कार्य एक सर्वथा नई चीज है। परंतु सांख्य को यह सिद्धांत मान्य नही है। उसके अनुसार कार्य न एक नई उत्पत्ति है और न कारण मे उसका अभाव होता है। यह मानता है कि कारण और कार्य समान रूप के सत्य होते हैं और कार्य कारण का परिणाम होता है। तदानुसार

एकमात्र वस्तु ब्रह्म है वह जगत का अधिष्ठान है और जगत उसका विवर्त है। इस प्रकार ब्रह्म सम्पूर्ण विवर्त का एकमात्र कारण है या अंतिम कारण है। ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है।

सांख्य परिणामवाद को मानता है साथ ही यह सलार्थवाद का प्रतिपादनकरता है। इनका मानना है कि कार्य वस्तुतः कारण मे विद्यमान रहता हैं। यदि ऐसा न हो तो हम बालू से भी मक्रणन निकाल सकते हैं। सत्यकार्यवाद का यही सिद्धांत है, जिसके दो रूप हैं–1. परिणामवाद, 2. निवर्तवाद।

परिणामवाद का अभिप्राय है कार्य की उत्पत्ति का अर्थ है कारण का वास्तव मे रूपांतरित होना जैसे दूध का परिणाम दही।

2. <u>प्रकृति</u> :– सांख्य दर्शन जगत में प्रकृति को सभी बातो का मूल कारण मानता है। और समस्त विषयों का अनादि मूल स्रोत होने के कारण वह प्रकृति को नित्स व निरपेक्ष मानता है क्योकि सापेक्ष व अनित्य पदार्थ जगत का मूल कारण नहीं हो सकता है। मन, बुद्धि और अंहकार जैसे सूक्ष्म कार्यों का आधार होने के कारण प्रकृति एक गहन, अनंत और सूक्ष्म शक्ति है। जिसके द्वारा संसार की सृष्टि और लय का चक्र निरंतर प्रवाहित होता रहता है। सांख्य प्रकृति के अस्तित्व को सिद्ध करने हेतु निम्न प्रमाण देता है।

1. अनुभव की वस्तुयें कृतक है वे उन कारणों पर निर्भर है, जिनमें वे अत्यक्त अवस्था मे रहती है। कारण मे कम से कम उतनी सत्यता रहनी चाहिए जितनी कार्य मे रहती हैं। हर एक कार्य मे एक कारण होता है।

2. दृश्य वस्तुएँ अनित्य और नाशवान है वे नष्ट होने पर अपने कारणों मे लीन हो जाती है इसलिए जगत के आदि उपादान कारण को नित्य होना चाहिए।

3. दृश्य वस्तुएँ परिछिनन परिणाम वाली है वे अविभु है, अध्यापक है कार्य कारण से व्याप्त रहता है। लेकिन कारण कार्य से व्याप्त नही रहता। कारण कार्य की अपेक्षा अधिक व्यापक है, उदाहरणार्थ– दूध कारण है और उससे मक्खन, घी, दही, पनीर, खोआ, क्रीम, मिठाई आदि निकालना कार्य।

4. दृश्य वस्तुएँ सक्रिय व गतिशील होती है। इसलिए उनका आदि कारण निष्क्रिय और गतिहीन होना चाहिए। प्रकृति परिणमनशील है लेकिन उसमें गति नही हैं।

5. दृश्य वस्तुएँ नाना, कृतक, परतंत्र, सावयव और व्यत्त है इसलिए जगत का आदि कारण एक अकृतक, स्वतंत्र, निरवयव और अव्यक्त होना चाहिए।

3. <u>पुरुष या आत्मा</u> :– सांख्य मानता है कि आत्मा का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है और इसकी सत्ता का किसी प्रकार खंडन नही किया जा सकता। सांख्य पुरुष को निगुर्ण विवेकी, निरवयव व ज्ञाता मानता है साथ ही यह भी मानता है कि पुरुष प्रत्येक शरीर मे भिन्न है। पुरुष को वह चेतन, अपरिणामी, अपरिवर्तनशील, निष्क्रिय व कूटस्थ नित्य भी मानता है। सांख्य अनेक पुरुषों का अस्तित्व मानता है चूंकि अलग अलग व्यक्तियों के जन्म–मरण और इन्द्रियाँ अलग–अलग होते है। अलग–अलग शरीरों में अलग–अलग आत्मा होते है। सभी पुरुषों में नैतिक गुण भी अलग–अलग होते हैं। कुछ मे सत्व होता है

तो कुछ मे रजस व तमसा सांख्य मत के अनुसार आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से भिन्न है। यह सांसारिक विषय नही है।

4. **मोक्ष** :– हमारा सांसारिक जीवन सुख–दुःख से परिपूर्ण है और व्यक्ति इनका भोग करता है। साधारणतया जीवन मे तीन प्रकार के दुःख होते हैं– 1. आध्यात्मिक, 2. आधिभौतिक, 3. आधिदैविक।

मानव दुःख से स्वयं को परे रखना चाहता है परंतु यह नश्वर शरीर सदैव ही दुखों के जाल से घिरा रहता है। मनुष्य का यह प्रयास होना चाहिए कि वह दुखों की निवृत्ति करे और दुखों की निवृत्ति ही मोक्ष कहलाती है। मोक्ष सुख रूप नही है बल्कि दुःख की आत्यन्तिक हानि है। धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ है, क्योंकि यह नाशवान हैं। मोक्ष परम् पुरुषार्थ हैं क्योंकि यह निध्य हैं।

मोक्ष दो प्रकार का होता हैं–1. जीवन्मुक्ति, 2. विदेहमुक्ति।

जीवन्मुक्ति मे संस्कार शेष रहते हैं और उनका सबंधं शरीर से रहता है। जबकि विदहेमुक्ति मे संस्कार भी नष्ट हो जाते है और शरीर भी।

5. **ईश्वर** – सांख्य को हम दो भागों मे विभक्त करते हैं–

1. सनातन सांख्य – अनीश्वरवादी
2. वास्तविक सांख्य – ईश्वरवादी

सांख्य के कुछ टीकाकार ईश्वर के अस्तित्व के विरोध मे मत देते है। वह वेदों की सत्ता मे विश्वास रखते हैं। तथा ईश्वर के अस्तित्व विहीन होने की चर्चा नही करते परंतु यह अवश्य कहते है कि एक संसार को समझने हेतु प्रकृति व पुरुष पर्याप्त हैं, तो ईश्वर का प्रश्न नही उठाना जाना चाहिए।

सांख्य दर्शन का शैक्षिक महत्व :– सांख्य दर्शन मे दो सत्तायें विधमान हैं– 1. प्रकृति, 2. पुरुष।

सांख्य का यह सिद्धांत बाल विकास का सिद्धांत प्रस्तुत करता है। हम यह जानते है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का शारीरिक, मानसिक व चारित्रिक विकास करना है। इसी रूप मे यदि हम देखे तो यह कह सकते है कि पुरुष के संसर्ग में जैसे प्रकृति का विकास होता है, वैसे ही शिक्षा के संसर्ग में बालक का।

सांख्य दर्शन बालक के विकास की दो अवस्थाओं की चर्चा भी करता हैं–1. गर्भावस्था मे बालक का विकास, 2. जन्म पश्चात् बालक का विकास।

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि वह बालक की बुद्धि या महत का विकास करे चूँकि बाध्य जगत के अनुभवों का तथ्यात्मक संकलन बुद्धि द्वारा ही समंव हैं। सांख्य दर्शन द्वारा प्रतिपादित मन, अहंकार व बुद्धि को हम चित्त केत विभिन्न पक्षों से अग्र प्रकार से सम्बंधित कर सकते हैं–

1. मन — ज्ञानात्मक

2. अहंकार — भावात्मक

3. बुद्धिष्महत — सकंल्पनात्मक

सांख्य का यह भी मत है कि प्रकृति अचेतन तथा जड़ है। जो शिक्षक को इस बात का ज्ञान कराती है कि बुद्धि, अहंकार, मन आदि भी चेतन रहित होने के कारण स्वयं की शक्ति से न सात प्रादन कर सकते है न क्रियाशील हो सकते है। उन्हे पुरुष की चेतना का ज्ञान प्राप्त होता है व उसी से वह ज्ञान प्राप्त करते हैं।

सांख्य दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों को निम्न दो भागों मे विभन्न करता है– 1. पारमार्थिक उद्देश्य, 2. लौकिक उद्देश्य।

पारमार्थिक उद्देश्य से आशय है मुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति का मार्ग हैं। अविद्या या अज्ञान का विनाश। अतः शिक्षा का यह उत्तरदायित्व है कि वह मनुष्य को अज्ञान व अविद्या से मुक्ति दिलाये। दूसरे शब्दों मे हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है अज्ञान रूपी अहंकार से ज्ञान ष्पी प्रकाश की ओर मानव को उन्मुख करना।

लौकिक उद्देश्यों की चर्चा करते हुए सांख्य का विचार है कि मानव के अंदर निहित तीन गुण प्रमुख हैं–1. सत्व, 2. रजस, 3. तमस।

सत्व के बाहुल्य से ही मनुष्य सुख वादी होता है। शिक्षा के द्वारा रज व तम से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया जाना चाहिए और यह आवश्यक है कि बालक के अंदर विवेक ज्ञान उत्पन्न किया जाये।

न्याय दर्शन

न्याय दर्शन — न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम थे जिन्हे गौतम व अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता है। न्याय को हम निम्न भागों मे बाँटते हैं–

1. ज्ञान शास्त्र
2. हेतु विद्या या कारणो का विज्ञान
3. वाद् विद्या या वाद–विवाद का विज्ञान
4. आन्वीक्षिकी या आलोचनात्मक अध्ययन का विज्ञान

भाष्य मे न्याय का अर्थ परमारर्थोः परीक्षम् न्याय बताया गया है। अर्थात् प्रमाणों या पदार्थों के आधार पर अर्थ की परीक्षा ही न्याय है। कुछ विद्वान न्याय को 'नी' धातु से निष्पन्न मानते हैं।

भारतीय दर्शन शास्त्र मे तर्कशास्त्र के लिए भी न्याय शास्त्र का प्रयोग किया जाता है। न्याय प्रधानतः तर्क का विचार करता है। साथ ही वह भौतिक जगत के स्वरूप जीवात्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का भी दार्शनिक विवेचन करता है। न्याय वस्तुवादी

दर्शन है और इसका प्रतिपादन विशेषतः युक्तियों के द्वारा माना गया है। न्याय शब्द का शाब्दिक विवेचन इस प्रकार किया जाता है।

न्याय उचित या वांछनीय – इस संदर्भ में न्याय दर्शन विचारों की शुद्धता पर ध्यान देता है और इसी कारण हम जब न्याय दर्शन को तर्क शास्त्र के अर्थ मे अवलोकित करते है तो उसके अन्तर्गत सुतर्क को अवलोकित करते हैं। केवल तर्क या कुतर्क को नही। विद्वानो की यह भी मान्यता है कि न्याय शास्त्र के अध्ययन द्वारा हम व्यक्ति की युक्ति–युक्ति विचार करने तथा आलोचनात्मक दृष्टि से सोचने–समझने की शक्ति का विकास कर सकते है।

न्याय दर्शन के अनुसार बाह्य वस्तुओं का अस्तित्व ज्ञाता से स्वंतत्र रहता है। अर्थात वह हमारे ज्ञान पर निर्भर नही है।

न्याय का विचार है कि प्रमाण यथार्थ ज्ञान के कारण है और मुख्य रूप सें चार प्रमाण होते हैं–1. प्रत्यक्ष, 2. अनुमान, 3. उपमान, 4. शब्द।

1. **प्रत्यक्ष ज्ञान** – न्याय ज्ञान या बुद्धि को अर्थों की उपलब्धि या चेतना व अनुभाव कहता है। इसके अनुसार वस्तुओ के साक्षात् या आरोप ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते है और इसकी उत्पत्ति वस्तु तथा ज्ञानेन्द्रियो के संयोग से होती है। यथार्थ ज्ञान जिसे कि प्रभा कहा गया है, वस्तुओं को उसी रूप मे ग्रहण करता है। जिस रूप मे वह है, यह स्मृति को प्रभा नहीं मानते। इनके अनुसार स्मृति पहले के ज्ञान का स्मरण मात्र है। स्मृति से भिन्न ज्ञान को अनुभव मानते हैं। न्याय संशयद्व भ्रम व तर्क को अप्रभा मानते है। प्रमाण प्रभा का कारण या साधन है। अप्रभा अनुभव नही है। स्मृति अनुभव न होने के कारण अप्रभा है। अप्रभा वस्तु के सच्चे स्वरूप की उपलब्धि नहीं करती। अप्रभा का विषय यथार्थ नही होता। इन्द्रिय जन्य ज्ञान की दो अवस्थायें मानी जाती हैं। प्रथम अवस्था में इन्द्रिय तथा पदार्थ के संसर्ग से जो ज्ञात होता है, वह निश्चित तो होता है परंतु अवर्णनीय होता हैं। दूसरी अवस्था मे ज्ञान पदार्थ की जाति व उसके गुण स्पष्ट होते हैं। और इसे हम सजिकल्प प्रत्यक्ष कहते है।

धर्म कीर्ति मे प्रत्यक्ष ज्ञान के 4 प्रकार बताये गये हैं–1. इन्द्रिय जन्य ज्ञान, 2. मानसिक ज्ञान, 3. आत्म चेतना, 4. अर्न्तदृष्टि।

2. **अनुमान** – अनुमान परोक्ष ज्ञान है दो वस्तुओं की व्याप्ति के आधार पर उनमे से एक वस्तु के ज्ञान से दूसरी वस्तु का ज्ञान होना अनुमान हैं। इस प्रकार ज्ञान को अनुमान इस कारण कहा जाता है चूंकि यह किसी अन्य ज्ञान के बाद अनुभव होता हैं। अनुमान का शाब्दिक अर्थ अग्र प्रकार किया जाता है–

अनु – पश्चात

मान – ज्ञान

इसी कारण विद्वानगण अनुमान को परोक्ष ज्ञान भी कहते हैं। न्याय–शास्त्र यह मानता है कि सभी प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा अर्जित नही किया जा सकता और अनुमान प्रत्यक्ष ज्ञान का पूरक है।

अनुमान मे न्याय दर्शन के अनुसार भूत, भविष्य, वर्तमान और दूरस्थ वस्तुओ का समवेश होता है। जबकि प्रत्यक्ष मे इस स्थान व इस काल को समहित किया जाता है।

3. <u>उपमान</u> – न्याय दर्शन के अनुसार उपमान तीसरा प्रमाण है यह वह है जिसके द्वारा हम एक प्रसिद्ध वस्तु सार्ध्य के आधार पर नवीन वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते है या इसके द्वारा संज्ञा–संसि सम्बंध का ज्ञान होता है। अर्थात् इसके द्वारा किसी नाम तथा उसके नामों के सम्बंध का ज्ञान होता है। एक आदमी है जिसने नील गाय कभी नही देखी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसे बताया जाता है कि नील गाय कदकाठी व रंग मे इस प्रकार से होती है। कभी वह एक ऐसा पशु देखता है जो गाय के समान है तो उसे उस व्यक्ति का कथन याद आ जाता है और वह जान लेता है कि गाय के सदृश्य यह नील गाय ही है यही उपमान हैं।

4 शब्द – न्याय ने शब्द को एक स्वतंत्र प्रमाण माना है। शब्द का अभिप्राय है 'आप्त पुरुष का वचन'। आप्त पुरुष का अभिप्राय है वह व्यक्ति जो सत्य का ज्ञाता और सत्य का वक्ता है। ऐसा पुरुष जो कुंछ कहता है। उसका अर्थ समझकर किसी बात को जानना शब्द प्रमाण हैं। वास्तव मे शब्दो और वाक्यो मे जिन वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है उसे शब्द कहते है।

<u>न्याय दर्शन का शैक्षिक महत्व</u> :– न्याय दर्शन ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा के विभिन्न पक्षो को प्रभावित किया है। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि न्याय दर्शन ने शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण, विधि पाठ्यक्रम के सबंधं मे क्या चर्चा की है।

<u>शिक्षा के उद्देश्य</u>

1. बालक को इस योग्य बनाना कि वह सत्य का अनुसरण कर सके।

2. बालक की तर्क शक्ति का विकास करना।

3. वेदों के अस्तित्व में विश्वास रखना।

4. बालक की ईश्वर भक्ति में आस्था उत्पन्न करते हुऐ उनके अंदर धार्मिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना।

5. मानव जीवन में ज्ञान का प्रज्वलन करना।

6. शिक्षा द्वारा बालक को मोक्ष प्राप्ति हेतु तत्पर करना और इसके लिए उनमेंआत्मानुभूति का विकास करना।

<u>वेदांत</u>

<u>वेदांत और शिक्षा</u> – वेदांत सम्प्रदाय के दर्शन का आधार वेद तथा उपनिषद् हैं। इसकी मान्यता है कि मानव अपने वर्तमान के कर्म तथा पूर्व के कर्म से नियंत्रित रहता है। धर्म ही केवल मानव को ब्रम्हाण्ड मे संपोषित रखता है। अविद्या मानव को माया के जाल मे बाँध देती है, जो कि मानव के दुःख और वेदना का कारण है। वह इनसे बच सकता हैं तथा

अपने को जान सकता है विराग की भावना को अपना कर और ज्ञान को प्राप्त करके मानव का उद्धार शाश्वत तथा नश्वर मे विभेद समझकर ही हो सकता है।

वेदांत केवल सैंद्धातिक दर्शन नही है। यह एक सम्पूर्ण या आदर्श मानव बनने के लिए पथ प्रदर्शिका प्रदान करता हैं। यह पथ प्रदर्शिका व्यक्ति को यह निर्देश देती है कि वह क्या सीखे और कैसे उसे सीखे। एक व्यक्ति जो उनका अनुसरण करता है उसे हम वेदांत दर्शन के अनुसार आदर्श शिक्षित व्यक्ति कह सकते है।

वेदांत इस बात पर बल देता है कि इस संसार मे प्रत्येक वस्तु आत्मा है। आदर्श व्यक्ति नाम और रूप को त्याग देता है और आत्म अभिव्यक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वह यह मानता है कि वास्तविक प्रेम जो सदैव रहेगा वह ईश्वर के प्रति प्रेम है।

वेदांत के अनुसार सच्ची शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को केवल सही कार्य करना सिखाना नही है वरन् सही वस्तुओं से प्रसन्नता प्राप्त करना है। न केवल उद्यमशील होना है वरन् उद्यम के प्रति प्रेम होना है। यदि शिक्षा व्यक्ति को स्वंतत्रता प्रदान नही करती तो वह शिक्षा मूल्य रहित हैं। सच्ची शिक्षा उस समय प्रारंभ होती है। जबकि व्यक्ति सब सांसारिक प्रलोभनो से विमुख हो जाता है और अपना ध्यान अपने अतंर मे निहित शाश्वत की ओर लगाने लगता है और मूल ज्ञान का स्त्रोत बन जाता है एवं नवीन धारणाओं का झरना उसमे बहने लगता है।

वेदांत दर्शन सूत्रों का चयन 'वादरायण' ने किया था। जो ब्रम्ह सूत्र के रूप मे प्रस्तुत किये गये। शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य ने भाष्य लिखकर ब्रम्ह सूत्र का स्पष्टीकरण किया।

शंकराचार्य के अनुसार शिक्षा

शंकराचार्य एक वेदांत के विद्यार्थी के लिये कहते है कि उसे वह वैदिक पाठ पढने चाहिए जो ब्रम्ह से सरोकार रखते है। धर्म के संबंध मे उसे नही पढना चाहिए और उन धार्मिक परम्पराओं पर ध्यान नही देना चाहिए जो धर्म के लिए होती है। वैदिक पाठ के सम्बधं मे वह कहते है कि शिक्षक को पहले आत्म की एकता के सम्बधं मे पढ़ाना चाहिए और फिर उनको जो ब्रम्ह की परिभाषा देते हैं। अतएव शंकराचार्य स्थायी ज्ञान के महत्व पर बल देते हैं। वह ज्ञान जो परिवर्तनशील है उसका शिक्षण वह अच्छा नहीं समझते।

वेदांत दर्शन की विशेषताएं :–

वेदांत दर्शन को उत्तर मीमांसा कहते है। मीमांसा का विषय 'ब्रम्हज्ञान' है। पूर्व मीमांसा मे धर्म जिज्ञासा है तो उत्तर मीमांसा मे ब्रम्ह जिसासा है। दोनों का लक्ष्य एक ही है।

1. ब्रम्ह ही सत्य हैं।

2. जगत मिथ्या पर सत्य है।

3. माया ब्रम्ह की शक्ति और जगत की सृष्टि करने वाली है।

4. जीव स्थूल शरीरधारी एक व्यक्ति है जिसकी समष्टि ईश्वर हैं।

5. सृष्टि किया अक्षर ब्रम्ह की स्वाभाविक लीला रूप सूक्ष्म किया है।

6. वेदांत दर्शन का विश्वास पुनर्जन्म मे पाया जाता है।

7. वेदांत दर्शन मोक्ष या मुक्ति को अंतिम लक्ष्य मानता है।

8. परमात्मा की प्राप्ति का हेतु ब्रम्ह ज्ञान ही है।

9. कर्म निष्ठ और ज्ञान निष्ठ मे समुच्चय पाया जाता है।

10. सत्य त्रिकालावाधित होता है।

11. सत्ता त्रिविधि होती हैं।

बौद्ध शिक्षा – ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी मे वैदिक काल के हिन्दू धर्म कर्म मे कुछ दोष आने लगे। वास्तविक धर्म का लोप होने लगा। हिन्दू धर्म में दंभ प्रवेश कर गया। कर्मकांड को ही लोग धर्म मानने लगे। यज्ञ के नाम पर पशु बलि दी जाने लगी। तपस्या के नाम पर लोग गृह व्यागकर वनों मे मारे–मारे फिरने लगे। ऐसी अंधकारमयी स्थिति मं ज्योति दिखलाने वाला एक क्षत्रिय राजकुमार था, जिसको गौतम बुद्ध के नाम से जाना जाता है।

महात्मा बुद्ध का कहना था कि बलि और यज्ञ से जीव हिंसा होती है तथा व्यर्थ धन व्यय होता है। अतः इस प्रथा को समाप्त करो। अपना सम्पूर्ण यौवन वेदों को कंठस्थ करने में नष्ट कर देना मूर्खता है। तपस्या के द्वारा शरीर सुखाना व्यर्थ है। भगवान बुद्ध ने ऐसे धर्म सिंद्धातो का प्रतिपादन किया जो प्रत्यक्ष जीवन की वास्तविक समस्याओं का विश्लेषण करके धर्म का एक व्यवहारिक रूप प्रस्तुत करें। उन्होंने सात्विक भिक्षुओं के समाज की रचना की, जो शिक्षा और संयम द्वारा निर्वाण प्राप्त करने का प्रयास करते। इसका उपाय अंहिसा व पवित्र जीवन था।

संस्कार

प्रव्रज्या – जब बालक आठ वर्ष का हो जाता था तो उसका प्रव्रज्या संस्कार होता था। बालक सिर के बाल मुड़ाकर, पीले वस्त्र पहनकर नतमस्तक होकर, उपाध्याय के निकट जाकर कहता था कि आप मेरे उपाध्याय है। प्रव्रज्या के उपरांत बालक 'श्रमण' कहलाता था और उस पर मठ की अनुशासन प्रणाली लागू हो जाती थी और वह घर छोडकर उपाध्याय के अनुशासन मे रहने लगता था। हिंसा, असत्य, मादक पदार्थ, मांस, नृत्य तथा संगीत, श्रंगार इत्यादि का श्रमण के लिये निषेध था।

उपसम्पदा – अपनी शिक्षा के बारह वर्ष पूरे करने के बाद श्रमण का उपसम्पदा संस्कार होता था। संस्कार कम से कम बीस वर्ष की आयु हो जाने के बाद ही संभव था। उपसम्पदा संस्कार सम्पूर्ण जीवन के लिये था। उपसम्पदा संस्कार संघ के कम से कम दस भिक्षुओं की उपस्थिति में होता था।

पाठयक्रम – शिक्षा का मुख्य उद्देश्य जीवन मे 'निर्वाण' प्राप्त करना था। अतः शिक्षा भी धर्म प्रधान थी। सुतन्त, विनय, साहित्य तथा धर्म इत्यादि ही उनके शिक्षा के विषय था अधिकांश बौद्ध ग्रंथ पाली मे थे। बौद्ध काल मे शास्त्रीय शिक्षा के अतिरिक्त औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाती थी।

स्त्री शिक्षा – बौद्ध धर्म मे स्त्री को त्याज्य समझा जाता था। वैदिक शिक्षा के अर्न्तगत स्त्रियों की जो उपनयन संस्कार की व्यवस्था थी वह लगभग समाप्त हो गई थीं। फिर भी महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों और मठों और विहारों में रहने की आसा दे दी थी।

प्राचीन शिक्षा के केन्द्र – वैदिक काल मे शिक्षा गुरू द्वारा व्यक्तिगत रूप से दी जाती थी। अतः उस काल मे शिक्षा के सुसंगठित विशाल केन्द्र स्थापित न हो सके। शिक्षक अपनी सुविधा के अनुसार विभिन्न स्थानो पर एकत्रित हो जाते थे।

तक्षशिला – तक्षशिला प्राचीन काल मे ब्राह्मणीय शिक्षा का केन्द्र था। बौद्ध काल मे भी उत्तरी भारत मे यह प्रमुख शिक्षा का केन्द्र था। यह गांधार की राजधानी तथा रावलपिण्डी से बीस मील पश्चिम मे स्थित था। इसको राजा भरत ने अपने पुत्र तक्ष के नाम पर बसाया था।

तक्षशिला प्रधानतः उच्च शिक्षा का केन्द्र था। छात्र यहाँ विशेषीकरण के लिए आते थे। लगभग सोलह वर्ष की अवस्था मे विद्यार्थी तक्षशिला मे प्रवेश हेतु पहुँचते थे। लगभग आठ वर्ष की तक विद्यार्थी यहाँ रहकर विद्या अध्ययन करते थे। यहाँ वेद, वेदांत, व्याकरण, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा, ज्योतिष, कृषि, व्यापार, सर्पदशं चिकित्सा तथा तत्रं यहा के विशेष अध्ययन के विषय थे।

नालंदा

बिहार प्रान्त मे नालंदा प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षा केन्द्र था। यहाँ नागार्जुन के शिष्य आर्यदेव चौथी शताब्दी में रहे थे। यह मगध की राजधानी राजगृह से सात मील दूर और पाटलिपुत्र से 40 मील दक्षिण पश्चिम मे स्थित था। महात्मा बुद्ध के प्रिय शिष्य सारीपुत्त की जन्म भूमि होने के कारण भी यह बौद्धों का महत्वपूर्ण स्थान था। सम्राट अशोक ने यहा एक बिहार बनवाया। जब सन् 410 मे फाह्यान यहाँ आया तो नालंदा शिक्षा की शिक्षा की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नही था। इसका शैक्षिक उत्थान लगभग सन् 450 से प्रारम्भ हुआ। विश्वविद्यालय का सम्पूर्ण क्षेत्र एक विशाल व दृढ़ दीवार से घिरा था। जिसमे एक प्रवेश द्वार था। जिस पर द्वार पण्डित का निवास था जो प्रवेश परीक्षा लेता था। विश्वविद्यालय के भवन मे आठ सभा मंडप थे और तीन सौ अध्ययन कक्ष थे जहाँ विभिन्न विषयों पर सौ व्याख्यान प्रतिदिन किये जाते थे। विद्यार्थियों के आवास, भोजन और वस्त्र की व्यवस्था निःशुल्क थी। नालंदा को गुप्त वंशी राजाओं ने 100 गाँव दान मे दिये थे जिनकी आय से वहाँ का कार्य चलता था।

ह्वेनसांग और इत्सिंग नामक चीनी यात्री इस देश मे क्रमशः सन् 629 से सन् 645 तथा सन् 673 से सन् 693 तक रहें। ह्वेनसांग पांच वर्ष तथा इत्सिंग 10 वर्ष अध्ययन करते हेतु नालंदा मे रहे। उनका कहना है कि यहाँ लगभग 1500 शिक्षक और 8500 विद्यार्थी थे।

नांलदा बौद्ध शिक्षा का केन्द्र था। फिर भी यहा वैदिक शिक्षा तथा जैन धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त वेद, वेदांग, व्याकरण, ज्योतिष, योग, तर्कशास्त्र और चिकित्सा शास्त्र का भी अध्ययन किया जाता था।

यहाँ के छात्रों का देशभर मे सामन होता था। दूर–दूर से विद्यार्थी यहाँ प्रवेश लेने आते थे। यहाँ के विद्वानों की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति से प्रभावित होकर तिब्बत, चीन, कोरिया, सुमात्रा, जावा एवं लंका के असंख्य छात्र यहाँ अध्ययन करते थे।

इस प्रकार नालंदा लगभग 800 वर्ष तक इस देश मे ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण कर सन् 1200 के लगभग बख्तियार खिलजी की बर्बरता का शिकार हुआ।

जैन धर्म व शिक्षा

जैन धर्म सब सांसारिक कामनाओं और इच्छाओं पर विजय प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करने में विश्वास रखता है। इस धर्म के अनुसार सत्य परम हैं। जीव है। या आत्मा चेतन वस्तु आत्मा प्रकाशमय है और दुसरी वस्तुओं को भी प्रकाशमय बनाती है। इसकी प्रत्यक्षीकरण अनंत है। इसमे अनंत ज्ञान और अनंत शक्ति है।

मोक्ष प्राप्त करने के लिये जैन, सच्चा विश्वास, सच्चा ज्ञान एंव सच्चा आचरण जिसे श्रीरतना या तीन रत्न कहते हैं, आवश्यक मानते है। सच्चा विश्वास से तात्पर्य है। सत्यापन के प्रति पूर्ण आस्था । बिना शंका या त्रुटि के सत्य का ज्ञान सच्चा ज्ञान है। वह कर्म जो बिना इच्छा या घृणा के किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति जाये वह सही या सच्चा आचरण है। सही आचरण के द्वारा आत्मा उन कर्म से छुटकार पा जाती है जो कि उसे बंधन मे जकड़े रहते हैं। एक व्यक्ति जिसे आध्यात्मिक श्रेष्ठता प्राप्त करनी है उसमे पाँच उच्च सद्गुण होने चाहिए। यह है–

1. **अहिंसा** – जिसका अर्थ है सब प्राणीयों के प्रति उदारता किसी प्राणी का वध नहीं करे एवं सब कार्य हिंसा से पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो।

2. **सत्य** – जो इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति सत्य बोले और अपने आचरण मे सुहावना लगे।

3. **अस्तेय** – जिससे तात्पर्य है सम्माननीय आचरण ।

4. **ब्रम्हचर्य** – यह सब तरह की इच्छाओं को त्याग देना है। चाहे वह शारीरिक मानसिक कैसा भी हो।

5. **अपरिग्रह** – इससे तात्पर्य है सब सांसारिक रुचियों एव इच्छाओं को समाप्त कर देना। सांसारिक वस्तुओं की ओर उनका कोई मोह नही होना चाहिए। जैन धर्म के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्ति का विकास होना चाहिए जो त्रिरतन का अनुसरण करे और जिन पाँच सद्गुणो का आगे वर्णन किया गया है। वह उनके व्यक्तित्व मे शामिल हो। ऐसे व्यक्ति इस आदेश मे विश्वास रखोगे "अहिसा परमो धर्माः"।

जैन धर्म के अनुयायी अपने बालको की शिक्षा मे अहिंसा का पाठ पढ़ाते है और उन्हे दयावान बनने की सीख देते है। दया के चार रूप बताये गये हैं–

1. अच्छे कर्म बिना किसी फल की आशा नही करो।

2. दूसरों के सुख मे अपने को सुखी रखो।

3. दमन किये हुए और चिंता युक्त व्यक्तियों के साथ सहानुभूति रखोएवं उनके दुख दूर करने के लिए सक्रिय रूप से सहायता दो।

4. उनके ऊपर दया करो जिन्होनें कोई अपराध किया हो।

जैन निस्वार्थ सेवा के लिए शिक्षा देने को महत्व देते हैं। वह विश्वास करते है कि वह व्यक्ति पुण्य कमाते हे जो खाद्य पदार्थ, जल कपड़े, बिस्तर इत्यादि दरिद्रों को दान देते है, किसी को दुख देने वाली वाणी का प्रयोग नहीं करते और अन्य प्राणियो के प्रति आदर तथा प्रेम का भाव रखते हैं। जैन धर्म किसी परामात्मा जैसी यथार्थता को नही मानता। वह यह मानता है कि प्रत्येक आत्मा अपने सृजन के लिए स्वयं उत्तरदायी है और प्रत्येक जिसमे आध्यात्मिक शीर्ष पर पहुँचने की लालसा है और जो इसके लिए सक्रिया है वह ईश्वरत्व प्रात्त करने योग्य हो जायेगा। इस प्रकार प्रत्येक बंधन मुक्त ईश्वर समान पूजा योग्य है। जैन शिक्षा का आदर्श केवल किसी ईश्वर जैसी सत्ता की पूजा करना और उसको अपर्ण करना नहीं हैं। वरन् अपनी आत्मा को इतनी आध्यात्मिक ऊचाँई पर ले जाना है कि प्राणी ईश्वरत्व स्वयं अपने में प्राप्त कर ले।

मुस्लिम कालीन शिक्षा

मुसलमानों के आक्रमण तथा मुस्लिम शासकों के स्थायी रूप से बस जाने से भारतीय जन–जीवन मे विशेष परिवर्तन हो गया इसका प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र मे भी हुआ। प्रारम्भ मे मुस्लिम शिक्षा शहरी क्षेत्रों तक सीमित रही। कुछ मस्लिम बादशाहों ने वैदिक शिक्षा मे रूचि ली और संस्कृत के ग्रंथों का फारसी और अरबी मे अनुवाद कराया परंतु अधिकतर मुस्लिम बादशाहों ने मन्दिरों व विहारों को नष्ट किया और हिन्दू शिक्षा को समाप्त किया।

मुस्लिम शिक्षा का उद्देश्य

1. ज्ञान का प्रसार – मुस्लिम पैगम्बरो के अनुसार ज्ञान को रेगिस्तान मे मित्र एकांत मे साथी दुःख मे सहानुभूति देने वाला मित्रों के मध्य शोभा बढाने वाला तथा शत्रुओ से रक्षक माना जाता है। अतः शिक्षा सच्चे मुसलमान के लिए आवश्यक हैं।

2. धर्म प्रचार – इस्लामी शिक्षा का दूसरा उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार इस्लाम धर्म का प्रचार करना एक धार्मिक कर्तव्य माना गया है। धर्म प्रचारक काजी कहलाते थे। मकतवो तथा मदरसों में कुरान की शिक्षा दी जाती थी। धर्मान्धता के कारण ही मुस्लिम शासकों ने प्राचीन हिन्दू मंदिरों तथा बौद्ध बिहारों को नष्ट किया।

3. <u>नैतिक विकास</u> – इस्लामी कानून, सामाजिक प्रथाओं और सिद्धांतो की शिक्षा दी जाती थी जिससे बालक को नैतिक–अनैतिक में भेद का ज्ञान हो तथा नैतिक गुणों का विकास सम्भव हो।

4. <u>जीविकोपार्जन</u> – इस्लामी शिक्षा मे रूचि बनाये रखने के लिए शिक्षित व्यक्तियों को राज्य मे अनेक पदों पर आसीन किया जाता था। हिन्दू भी फारसी भाषा के विद्वान होकर ऊँचे पदो पर नियुक्त हुए।

5. <u>राजनीतिक उद्देश्य</u> – मुसलामान शासकों का यह विचार था कि जब तक भारत की अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को नष्ट नही किया जायेगा। मुस्लिम राज्य की स्थायी नीव नही पड़ सकती। इस उद्देश्य को लेकर कुछ मुस्लिम शासको ने प्राचीन हिन्दू तथा बौद्ध शिक्षा संस्थाओं को नष्ट किया और कुछ ने मुस्लिम शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति भी की। अकबर को हम इसी उद्देश्य को लेकर शिक्षा क्षेत्र मे आगे बढते पाते है।

<u>शिक्षा की व्यवस्था</u>

मुस्लिम काल में प्राथमिक शिक्षा मकतब मे दी जाती थी और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा मदरसा मे जाती थी। मुगल काल मकतब में भारत में मकतबों की भरमार हो गई थी। मकतब में वर्णमाला सीखने के पश्चात् विद्यार्थियों को कठिन शब्दों का ज्ञान कराया जाता था। यह शब्द कुरान से लिये जाते थे। पढ़ना और लिखना सीख लेने के बाद व्याकरण का ज्ञान दिया जाता था। पाँच दैनिक नमाजों के लिए कुरान के जिन अंशो की आवश्यकता होती थी उनको विशेष रूप से याद कराया जाता था।

मदरसा–मकतब की शिक्षा समाप्त कर विद्यार्थी मदरसा मे प्रदेश लेता था इन मदरसो का प्रबधं प्राइवेट प्रबधं समितियो या सम्मानित व दानशील नागरिको द्वारा होता था। यह मदरसे भी मस्जिदो से जुड़े रहते थे। कभी–कभी मुस्लिम सम्राटों के मकबरों से भी मदरसे जुड़ जाते थे। भारत के कुछ भागों को छोड़कर मुस्लिम अधिकतर शहरी क्षेत्र के लोग थे। अतः मुस्लिम विद्वान अधिकर नगरों मे पाये जाते थे।

<u>पाठयक्रम</u> :–

मदरसो मे दी जाने वाली उच्च शिक्षा दो भागों में विभाजित की जा सकती है– 1. लौकिक, 2. धार्मिक। लौकिक शिक्षा के अर्तगत गणित ज्योतिष, संगीत, चिकित्सा, इतिहास, साहित्य, तर्कशास्त्र कानून आदि विषय थे। धार्मिक शिक्षा के अंर्तगत कुरान का गहन एवं विस्तृत अध्ययन इस्लामी कानून तथा सूफी धर्म के सिद्धांत सम्मिलित है।

<u>मुस्लिमकाल मे शिक्षा की प्रगति एवं पतन</u>

सम्राट अकबर के समय मे पुनः पाठ्यक्रम मे परिवर्तन हुआ। उसने हिन्दुओं के लिए भी मदरसे रणुलवाये, जहां फारसी के साथ–साथ हिन्दू दर्शन व साहित्य का अध्ययन कराया जाता था।

12वीं शताब्दी के अंत मे मोहम्मद गौरी ने मुस्लिम शिक्षा की नींव डाली। अजमेर मे उसने मदरसे बनवायें उसके प्रमुख सिपहसालार ने बौद्ध विश्वविधालयो का विध्वंस कर

भारतीय संस्कृति को महान् क्षति पहुँचाई। 13वीं शताब्दी मे इल्तुतमिश, रजिया और बलबन ने भी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

तुगलक वशं ने भी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। मुहम्मद तुगलक शिक्षा प्रेमी तथा स्वयं विद्वान था। सन् 1346 में उसने देहली मे एक मदरसा खोला। फीरोजशाह तुगलक (1325–51) मध्यकालीन बादशाहों मे सबसे बड़ा विद्वान था।

भारत मे मुगल साम्राज्य ने शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन दिया। बाबर भारत मे मुगल साम्राज्य का प्रथम बादशाह था। यद्यपि वह स्वयं विद्वान एवं कवि था। तथापि अपने अल्प शासनकाल 1526–30 में शिक्षा के लिए कुछ भी न कर सका। मुगल सम्राटों मे अकबर महान् (1550–1605) था। यद्यपि वह स्वयं निरक्षर था। परंतु बहुत होशियार था। उसने बहुत से कॉलेजों और पुस्तकालयों की स्थापना की। उसने हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों प्रकार की शिक्षा को प्रोत्साहित किया। उसने कुछ संस्कृत की पुस्तकों के फारसी में अनुवाद करायें।

स्त्री शिक्षा :–

मध्यम वर्ग की बालिकाओं के लिए शिक्षा का कोई विशेष प्रबंध नही था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उनके माता–पिता द्वारा ही दी जाती थी। बचपन में उनको सहशिक्षा दी जाती थी।

यूनिट–तृतीय
पश्चिमी दर्शन शास्त्र की कुछ मुख्य अवधारणायें

1. प्रकृतिवाद :–

प्रकृतिवाद यह मानता है कि "वास्तविक संसार भौतिक संसार है" इसी कारण हम प्रकृतिवाद को भौतिकवादी दर्शन भी कहते है। प्रकृतिवाद इस सृष्टि की रचना के लिये प्रकृति को ही उत्तरदायी मानता है। रूसो हरबर्ट स्पेन्सर आदि प्रमुख प्रकृतिवादी विचारक हैं।

प्रकृतिवाद की परिभाषा :–

थॉमस एण्ड लैग – प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अंतिम वास्तविकता भौतिक है आध्यात्मिक नही।

आर. बी. पैरी – प्रकृतिवाद विज्ञान का दार्शनिक विचार है जिसमें दार्शनिक समस्याओं के निराकरण हेतु विज्ञान के सिद्धांतो का प्रयोग किया जाता है। यह आदर्शवाद के विपरीत है जो मन को पदार्थ के अधीन मानकर यह विश्वास करता है कि वास्तविक सत्ता, आध्यात्मिक न होकर पदार्थ में निहित होती है।

जेन्स वार्ड – प्रकृतिवाद वह सिद्धांत है जो प्रकृति को ईश्वर से पृथक करता है, आत्मा को पदार्थ के अधीन मानता है और अपरिवर्तशील नियमों को सर्वोच्च स्थान देता है इनके अनुसार प्रकृति ही वास्तविकता है जो अपने नियमों द्वारा संचालित होती है व उसी के द्वारा निर्धारित होती है।

ब्राइस के अनुसार – प्रकृतिवाद एक प्रणाली है और जो कुछ आध्यात्मिक है, उसका बहिष्कार ही उसकी प्रमुख विशेषता है।

दार्शनिक प्रकृति की व्याख्या सामान्यतया इस रूप मे करते है कि प्रकृति सामान्य व स्वाभाविक रूप से विकसित होने वाली प्रकिया हैं। इस ब्रम्हाण्ड की वह सभी वस्तुएँ जिनकी रचना या निर्माण में मनुष्य का शून्य योगदान है, वहीं प्रकृति है। इसके साथ ही कुछ दार्शनिक विचारधारा मानती है कि प्रकृति वह है जो सर्वत्र तथा सर्वदा विद्यमान है और इसकी गतिविधियाँ निश्चित व प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित व नियंत्रित होती है।

प्रकृतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ :–

1. **प्रकृति ही वास्तविकता है** – प्रकृतिवाद इस बात पर विश्वास करता है कि वास्तविकता व प्रकृति मे कोई अंतर नही है अर्थात् जो वास्तविक है वह प्रकृति है या जो प्रकृति है, वह वास्तविक है प्रकृतिवाद प्रकृति को अंतिम सत्ता मानता है और मानव प्रकृति पर अधिक बल देता है।

2. **मन व शरीर मे कोई अंतर नहीं है** – प्रकृतिवादी विचारधारा मन व शरीर मे कोई अंतर नहीं करती। वह यह मानती है कि मानव पदार्थ है, चाहे उसका मन हो या शरीर, दोनो ही इस पदार्थ का परिणाम है।

3. **वैज्ञानिक ज्ञान पर बल** – प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि वैज्ञानिक ज्ञान ही उचित ज्ञान होता हैं और हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि हम इस वैज्ञानिक ज्ञान को जीवन से जोड़ सकें।

4. **वैज्ञानिक विधि द्वारा प्राप्ति पर बल** – प्रकृतिवाद के अतंगर्त आगमन विधि द्वारा ज्ञानार्जन की चर्चा की गई है, साथ ही वह इस बात की भी चर्चा करते है कि ज्ञान प्राप्ति का सर्वोचित तरीका निरीक्षण विधि है।

5. **प्रकृति ही वास्तविक सत्ता** – प्रकृतिवाद विचार यह भी मानता है कि इस संसार मे सर्वोच्च शक्ति प्रकृति के हाथों मे ही निहित रहती है। और प्रकृति के नियम अपरिवर्तनशील है।

6. **मानव प्रकृति का ही अंग है** – प्रकृतिवादी समाज के असतित्व के प्रति कोई आस्था नही रखते। इस कारण मनुष्य को समाज का अंग नहीं मानते। उनका विचार है कि मनुष्य प्रकृति का ही अभिन्न अंग होता है।

7. **मूल्य प्रकृति मे ही निहित है** – मूल्य का निर्धारण आदर्शवादी के अनुसार समाज द्वारा होता है जबकि प्रकृतिवादी यह मानते है कि मूल्य प्रकृति मे ही विद्यमान रहते है और यदि मानव मूल्यों की प्राप्ति चाहता है तो उसे प्रकृति से घनिष्ठ संबंध स्थापित करना होगा।

प्रकृतिवाद तथा शिक्षा

प्रकृतिवादी विचारकों ने शिक्षा के क्षेत्र मे क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उनका मत था कि शिक्षा अध्यापक के हाथों से संचालित की जाने वाली प्रक्रिया नहीं है, वरन् उसका संगठन व्यक्ति या बालक के अनुकूल किया जाना चाहिये। शिक्षा के स्वरूप के सम्बंध में प्रकृतिवाद ने जो मुख्य विचार प्रस्तुत किये है, वह इस प्रकार है–

1. प्रकृति के अनुसार शिक्षा।

2. बालक शिक्षा का केन्द्र बिंदु।

3. प्रकृति की ओर लौटो।

4. बालक की खुशहाली पर बल।

5. बालक की स्वतंत्रता पर बल।

6. मूल प्रवृत्तियाँ शिक्षा का आधार है।

7. इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति का मार्ग।

8. पुस्तकीय ज्ञान का विरोध।

प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य :—

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री स्पेन्सर ने मानव जीवन को समग्रता देने हेतु पांच प्रमुख कियाएँ बतायी हैं।

1. आत्मरक्षा

2. जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति

3. संतति पालन

4. सामाजिक व राजनैतिक संबंधों का निर्वाह

5. अवकाश का सदुपयोग

प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री रूसो ने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को प्रकृति के अनूकुल जीवन व्यतीत करने हेतु योग्य बनाना है। शिक्षा के द्वारा हम मानव मे कुछ नया उत्पन्न नहीं करते। वरन् मानव की मौलिकता को बनाये रखाने का प्रयास करते हैं। सक्षेंप मे प्रकृतिवाद के अनुसार हम शिक्षा के निम्न उद्देश्य बता सकते हैं—

1. शिक्षा द्वारा बालक को प्राकृत जीवन व्यतीत करने हेतु तैयार करना।

2. बालक की प्राकृतिक शक्तियों को विकास करना।

3. बालक को जीवन संघर्ष के योग्य बनाना।

4. बालक के व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास।

5. मूल प्रवृतियो का शोधन एवं मार्गान्तरीकरण।

6. बालक का आत्म संरक्षण व आत्म संतोष की प्राप्ति।

प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियाँ

प्रकृतिवाद परम्परागत शिक्षण की आलोचना करता है और "प्रकृति की ओर लौटो'' का नारा देता है। उनकी मान्यता है बच्चे को स्वयं के अनुभव के आधार पर सीखना चाहिए। शिक्षण करते समय अध्यापक सरल से कठिन की ओर ज्ञात से अज्ञात की ओर, अनिश्चित से निश्चित की ओर मूर्त से अमूर्त की ओर शिक्षण के सूत्रों का प्रयोग करना चाहिए। इस आधार पर प्रकृति वादियो ने खेल द्वारा शिक्षा पद्धति, प्रोजेक्ट विधि के अपनाने पर बल दिया।

प्रकृतिवाद व शिक्षक

रूसो के अनुसार अध्यापक का स्थान 'पर्दे के पीछे' होता है शिक्षक का कार्य बालक के उचित विकास हेतु वातावरण की रचना करना है और उस वातावरण मे बालक को स्वतंत्र छोड़ देना हैं।

कुछ विचारक अध्यापक को एक निरीक्षणकर्ता मानते है जिसका कार्य बालक के स्वाभाविक विकास का निरीक्षण करना है और उसके विकास हेतु उचित सुविधाये उपलब्ध कराना है।

प्रकृतिवाद यह भी मानता है कि अध्यापक का उत्तरदायित्व सिर्फ बालक की प्रकृति को समझना है।

प्रकृतिवाद और विद्यालय :–

विद्यालय के सम्बन्ध मे प्रकृतिवादी सहशिक्षा का समर्थन करते है और प्रचालित परीक्षाओं का विरोध करते है जिससे बच्चों का स्वाभाविक विकास हो।

शिक्षा मे प्रकृतिवाद की देन :–

1. बाल केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था
2. खेल की प्रमुखता
3. पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव द्वारा सीखने पर बल
4. बाल मनोविज्ञान के अध्ययन की प्रेरणा
5. जन शिक्षा का प्रसार एवम् स्त्री शिक्षा का समर्थन

2. आदर्शवाद :–

आदर्शवाद दार्शनिक विचारधारा प्राचीनतम विचारधारा है। मानव संस्कृति का जब से विकास हुआ। उसकी इस बात में आस्था रही कि इस प्रकृति मे वास्तविक तत्व आध्यात्मिक है और जब हम प्रकृति की सत्ता को तिरस्कृत करते हुये मनस् या आत्मा की सत्ता को स्वीकार करने लगते है उसे ही आदर्शवादी दर्शन कहते है।

परिभाषायें

रोस – आदर्शवाद के अनेक रूप है किन्तु सबका सार यह है कि मन या आत्मा ही इस जगत का पदार्थ है और मानसिक स्वरूप सत्य हैं।

बूबेकर – आदर्शवादियों के अनुसार इस जगत को समझने के लिये मन केन्द्रीय बिंदु हैं। इस जगत को समझने हेतु मन की क्रियाशीलता से बढ़कर उनके लिए अन्य कोई वास्तविकता नही है।

हैण्डरसन – आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है क्योकि आदर्शवदियों के लिए आध्यात्मिक मूल्य जीवन के तथा मनुष्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलु है। एक तत्व ज्ञानी आदर्शवादी का विश्वास है कि मनुष्य का सीमित मन असीमित मन से पैदा होता है। व्यक्ति और जगत दोनों बुद्धि की अभिव्यक्ति है और भौतिक जगत की व्याख्या मन से ही की जा सकती है।

आदर्शवाद की आधारभूत मान्यतायें :–

1 **भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जगत का महत्वपूर्ण स्थान** – आदर्शवाद के अनुसार भौतिक वस्तुएँ व भौतिक जगत नाशवान होने के कारण अस्थाई है और आध्यात्मिक जगत सत्य, स्थाई व वास्तविक है। इसका मूलभूत कारण यह है कि आध्यात्मिक जगत वैचारिक रूप में विद्यमान रहता है और विचार चिर स्थायी होते है और मानव का प्रमुख कार्य इस आध्यात्मिक जगत को समझते हुए उससे सम्बधं स्थापित करना हैं।

2. **ब्रह्माण्ड मानव मस्तिष्क मे निहित** – आदर्शवाद यह मानता है कि इस जगत की आधारभूत बाते मानव आत्मा व मस्तिष्क मे निहित होती हैं। इस कारण यह भौतिक पदार्थों को महत्व नही देता। वह मानते हैं कि मस्तिष्क में विचार पहले आता है और वस्तु की कल्पना बाद में जन्म लेती है।

3. **इस जगत मे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है** – आदर्शवादी जड़ व प्रकृति की तुलना में मनुष्य को महत्वपूर्ण स्थान देते है और इनके दर्शन का मुख्य आधार मानववाद है वह मानते है कि मनुष्य मे बुद्धि, तर्क व आध्यात्मिक गुण होते है और यह गुण उसे पाशविक प्रवृत्तियों से ऊँचा उठाते हुए उसके अंदर आत्मानुभूति की क्षमता उत्पन्न करते हैं।

4. **विभिन्नता मे एकता** – आदर्शवाद यह मानता है कि मानव जीवन तभी सफल व पूर्ण होता है जब वह जगत में विद्यमान एकता के मध्य ईश्वर का आभास कर सके।

5. **व्यक्तित्व के विकास पर बल** – आदर्शवाद व्यक्ति को एक आदर्श मानव या पूर्ण मानव के रूप मे विकसित करने की बात करता है। व्यक्ति में उन गुणों को प्रतिरोपित किया जाना चाहिए जो उसे एक अच्छा व्यक्ति बनने मे सहयोग दे सके।

6. **मनुष्य व प्रकृति मे संश्लेषण** – यह मानव जीवन की व्याख्या हेतु शास्त्र के आधार पर करते है। इसका अभिप्राय है कि मानव जीवन तथा प्राकृतिक प्रक्रिया के कुछ सामान्य उद्देश्य होते है जिसमे वह एक साथ चलती है।

आदर्शवाद एवं शिक्षा

आदर्शवाद मनुष्य को ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में स्वीकार करता हैं। रस्क के कथनानुसार शिक्षा के द्वारा आध्यात्मिकता का क्षेत्र विशाल बन जाता है और उसके द्वारा जाति के विचारों एवं संस्कृति की सुरक्षा की जाती है और उसे नई परिस्थितियों के ढाँचे मे ढालकर गतिशील बनाया जाता हैं।

मानव व पशु मे अतंर भी हम इसी आधार पर करते है कि पशु अपने वातावरण को ज्यों का त्यों स्वीकार करता है परंतु मनुष्य आदि काल से वातावरण को अपने अनुरूपढालता हैं। आदर्शवादी यह मानते है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक वातावरण से अनुकूलन शिक्षा के बिना भी कर सकता है परंतु सांस्कृतिक वातावरण से अनुकूलन हेतु शिक्षा की आवश्यक होती हैं और इस प्रकार हम समाजीकरण या संस्कृतिकरण की प्रक्रिया मानते है।

शिक्षा का अर्थ

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का अभिप्राय है बालक को गुणो से परिपूर्ण करना साथ ही शिक्षा वह है जो सिर्फ बालक के विकास तक ही सीमित नही रहती वरन् बालक को विकसित करके समाज का विकास करना चाहती है और आवश्यकता पड़ने पर समाज सुधारने का भी प्रयास करती है।

आदर्शवाद व शिक्षा के उदेश्य

1. **आत्मानुभूति का विकास** – आदर्शवादी विचारधारा यह मानती है कि प्रकृति से परे यदि कोई चेतन सत्ता के अनुरूप है तो वह है मनुष्य। इस कारण शिक्षा का सर्वोच्च कार्य यह है कि वह मनुष्य को इतना सक्षम बनायें कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने व उसकी अनुभूति कर सके।

2. **आध्यात्मिक मूल्यो का विकास** – आदर्शवादी विचारधारा भौतिक जगत की अपेक्षाकृत आध्यात्मिक जगत को महत्वपूर्ण मानती है। अतः शिक्षा के उद्देश्यो मे भी बालक के आध्यात्मिक विकास को महत्व देते है। यह मनुष्य को एक नैतिक प्राणी के रूप मे अवलोकित करते है व शिक्षा का उदेश्य चरित्र निर्माण को मानते हैं। वह सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के मूल्यो का विकास करते हुए इस बात की भी चर्चा करते है कि शिक्षा का प्रमुख उदेश्य बालक मे आध्यात्मिक दृष्टि से विकास करना हैं।

3. **समाज हित का उदेश्य** – आदर्शवाद जब शिक्षा के उदेश्यों की चर्चा करता है तो व्यक्तित्व के विकास पर बल देता है और व्यक्तित्व विकास मे सामाजिक हित अर्न्तनिहित होता है। प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक हॉकिगं जब शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करता है। तो वह शिक्षा के दो उदेश्य बताता हैं– 1. सम्प्रेषण, 2. विकास के लिये प्रावधान।

4. **बालक के व्यक्तित्व का उन्नयन**– बोगोस्लोवस्की के अनुसार, हमारा उद्देश्य छात्रों को इस योग्य बनाना है कि वे सम्पन्न तथा सारयुक्त जीवन बिता सकें सर्वांगीण तथा रंगीन व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें, सुखी रहने के उल्लास का उपभोग कर सके यादि तकलीफ आये तो गरिमा एवं लाभ के साथ उनका सामना कर सके तथा इस उच्च जीवन को जीने मे दुसरे लोगों की सहायता कर सके।

5. **जड़ प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व** – आदर्शवादी मनुष्य का स्थान ईश्वर से थोड़ा ही नीचा मानते है इनका विचार है कि मनुष्य इतना सक्षम होता है कि वह आध्यात्मिक जगत का अनुभव कर सकें व ईश्वर से अपना तादामय स्थापित कर सके उसकी अनुभूति कर सकें।

आदर्शवाद और शिक्षण विधियाँ

आदर्शवाद ने शिक्षण के लिये वाद विवाद, व्याख्यान विधि, आगमन–निगमन विधि, अनुदेशन प्रणाली के प्रयोग पर बल देते हैं।

आदर्शवाद और शिक्षक :–

आदर्शवादी शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक के स्थान को सर्वोपरि मानते है एवम् विशेष महत्व देते है और अध्यापक विधार्थी के विकास पूर्ण सहयोग प्रदान करें। उसे आध्यात्मिक चेतना कर स्त्रोत माना गया।

आदर्शवाद का मूल्यांकन :–

1. शिक्षा दर्शन के रूप मे शाश्वत् मूल्यों (सत्यम् शिवम्, सुन्दरम्) से परिचित कराता है।

2. बालक के व्यतित्व के विकास पर बल देता है बालक के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक, चारित्रिक एवं नैतिक, सामाजिक आदि के विकास करने पर बल देता है।

3. शिक्षण विधियों मे पेस्टालाजी की अभ्यास एवं आवृति विधि और हरबर्ट की पचंपदीय प्रणाली महत्वपूर्ण है।

4. आदर्शवाद ने शिक्षा के क्षेत्र मे अनुशासन को महत्वपूर्ण माना है और स्वशासन पर बल दिया है।

इस प्रकार आदर्शवाद सामान्य शिक्षा सबके लिये का समर्थक है लेकिन शिक्षा के अन्य भागो पर अधिक ध्यान नही दिया।

प्रयोजनवाद

'प्रेग्मेटिज्म' शब्द ग्रीक शब्द प्रेग्मेटिकोस (Pregmatikos) से आया है। ग्रीक 'प्रेग्या' का अर्थ है ''किया हुआ कार्य'' । दर्शन के रूप में इस वाद को लाने का श्रेय भी चार्ल्स सेन्डर्स पीयर्स को है। Pragmatic का अर्थ Practical इसलिए उसका हिन्दी रूपान्तर व्यावहारिक होगा। प्रेग्मेटिज्म का अर्थ प्रयोजनवाद करना भी उचित है, क्योंकि इस वाद में सोद्देश्य क्रिया को महत्व दिया जाता है। तथा सत्य को प्रयोजन की कसौटी पर करना जाता है।

परिभाषायें :–

1. **जेम्स के अनुसार** – प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव तथा मनोवृत्ति है। यह विचारों की प्रकृति एवं सत्य का भी सिद्धांत है और अपने अंतिम रूप में यह वास्तविकता का सिद्धांत है।

2. **रॉस के अनुसार** – प्रयोजनवाद एक मानवीय दर्शन है जो यह स्वीकार करता है कि मनुष्य क्रिया की अवधि में अपने मूल्यों का निर्माण करता है और यह स्वीकार करता है कि वास्तविकता सदैव निर्माण की अवस्था में रहती है।

3. **जेम्स प्रैट के अनुसार** – प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धांत, सत्य का सिद्धांत, ज्ञान का सिद्धांत और वास्तविकता का सिद्धांत देता है।

प्रमुख विशेषताएँ

1. **प्रजातंत्र में आस्था** – अर्थ क्रियावाद प्रजातंत्र शासन व्यवस्था पर बल देकर उसके प्रति अपनी आस्था अभिव्यक्त करता है। वह प्रजातंत्र को जीवन का एक तरीका व अनुभवों का आदान–प्रदान करने की एक व्यवस्था के रूप में देखता है। वह जीवन, शिक्षा व प्रजातंत्र को एक दूसरे से सम्बन्धित प्रक्रिया मानते हैं।

2. **किसी सार्वभौमिक सत्ता में आस्था व होना** – प्रयोजनवाद ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानता है कि ईश्वर मिथ्या है। आत्मा के अस्तित्व को वह मानता अवश्य है, परन्तु उसे एक क्रियाशील तत्व के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार सर्वोच्च सत्ता समाज की होती है।

3. **परम्पराओं व मान्यताओं का विरोधी** – अर्थ क्रियावाद निर्धारित अवस्थाओं का विरोधी है। प्रकृतिवाद द्वारा प्रकृति के अस्तित्व में विश्वास रखना या आदर्शवाद, एक चिरस्थायी सत्य को यह स्वीकार नहीं करता। वह विचारों की अपेक्षा क्रिया को अधिक महत्व देता है व यह मानता है कि वास्तविकता एक निर्माणशील प्रक्रिया है और उसके सम्बंध में हम किसी भी सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं।

4. **शाश्वत मूल्यों पर बहिष्कार** – प्रयोजनवाद किसी निश्चित या शाश्वत सत्य या सिद्धांत की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। वह यह मानते हैं कि मूल्य तो मानव की व्यक्तिगत व सामाजिक घटनओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं जो सदैव परिवर्तनशील होते हैं वह यह मानते हैं कि विश्व गतिशील है। अतः मूल्य भी गतिशील होते हैं।

5. **उपयोगिता के सिद्धांत पर बल** – प्रयोजनवाद यह मानता है कि किसी भी सिद्धांत या विश्वास की कसौटी उपयोगिता है। यदि कोई सिद्धांत हमारे उद्देश्यों का पूरक है व हमारे लिए लाभप्रद है तो ठीक है अन्यथा नहीं।

6. **व्यक्ति के सामाजिक जीवन पर बल** – प्रयोजनवाद व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई के रूप में स्वीकार करता है व बालक के व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष के विकास की अधिकांश चर्चा करता है। व्यक्ति समाज में रहकर अपने जीवन को सफल बना सकें, इसे वह महत्व देता है।

7. **मनुष्य एक मनोशारीरिक प्राणी** – प्रयोजनवाद मनुष्य को एक मनोशारीरिक प्राणी मानता है। इनके अनुसार मनुष्य को विचार व क्रिया करने की शक्तियाँ प्रदान है। जिनके माध्यम से मनुष्य समस्या को समझने व उनका हल ढूंढने का प्रयास करता है।

प्रयोजनवाद के मूल सिद्धांत :–

1. यह वाद किसी भी शाश्वत मूल्य तथा शाश्वत सत्य में विश्वास नहीं रखता।

2. यथार्थ का ज्ञान असंभव है।

3. परिकल्पना को प्रयोग द्वारा परखकर हम ज्ञान के समीप पहुँच सकते हैं।

4. मनुष्य रचनात्मक कार्य करता है, यथार्थ की रचना तक में उसका हाथ है तथा मूल्य तो मानव द्वारा ही निर्मित होते हैं।

5. सत्य वस्तु पर घटित होता है, यदि वह उपयोगी है तो उसे मानना हमार कर्त्तव्य है। फल द्वारा ही वस्तु के गुण का निर्णय हो सकता है।

6. मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसी कारण सामाजिक कुशलता का गुण मनुष्य में आना आवश्यक है। व्यक्ति का जीवन समाज में रहकर ही सफल हो सकता है। समाज के बाह 'मनुष्य' कल्पना की बात है तथा उसकी सपुलता संभव है।

प्रयोजनवाद तथा शिक्षा :–

प्रयोजनवाद के तीन रूप हैं –1. मानवीय प्रयोजनवाद, 2. प्रायोगात्मक प्रयोजनवाद, 3. जीवशास्त्रीय प्रयोजनवाद।

बालक के स्थान को प्रकृतिवाद के अनुरूप ही यह वाद भी महत्व देता है। बालक, बालक है न कि प्रौढ़ का एक छोटा रूप उसकी आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा रुचियों में और एक प्रौढ़ की आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा रुचियों में अंतर होता है। यथार्थ को परिवर्तनशील मानकर बालक को भविष्य के लिए शिक्षा देने की बात करना अनुचित है। शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करने की बात पर प्रयोजनवादी बल नहीं देते हैं।

शिक्षा, शिक्षा के लिए इस सिद्धांत के विपरीत शिक्षा बालक के लिए में उनका विश्वास है। शिक्षा का महत्व तथा आवश्यकता बालक की कुछ इच्छाओं की पूर्ति करने में है। बालक को वातावरण के अनुकूल बनाने में शिक्षा का हाथ होता है। मनुष्य के मस्तिष्क को इकाई मानकर प्रयोजनवादी शिक्षा सिद्धांत और शिक्षा मनोविज्ञान के निकट आता है तथा वह मानता है कि वे दोनों एक दूसरे पर परस्पर प्रभाव डालते हैं।

आज के युग पर इस वाद का प्रभाव स्पष्ट ही अंकित है। शिक्षा के आदर्श परिवर्तनशील विश्व में से से नहीं नहीं रह सकते। शिक्षा रुचिकर हो, आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली हो समाज केन्द्रित हो तथा उसकी शक्ति समाज के विकास में लगे इस प्रकार के सिद्धांतों द्वारा उन्हेनि शिक्षा को नवजीवन प्रदान किया है और निगमन विधि प्रयोगात्मक विधि, प्रयोगात्मक सिद्धांत तथा बाध्य मूल्यों आदि प्रत्ययों के माध्यम से शिक्षा को इस वाद द्वारा बल भी मिला है।

प्रयोजनवाद तथा शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा की स्थितियाँ चाहे वे स्कूल की हो या बाहरी जीवन प्रवाह के चक्र में घटनामात्र है। इसलिये जानने की ये घटनाएं और अधिक जानकारी के साधक बनकर सफल अनुभवों का रूप अंत में धारण कर लेती है। प्रयोजनवाद की शिक्षा का उद्देश्य न केवल व्यक्ति के जीवन सफलता है, वरन् सामाजिक जीवन की असफलता है इसलिए सभ्यता, व्यावसायिक तथा उदार शिक्षा के मूल्य, सभी उसमें आवश्यक है। उनके मतानुसार जीवन के प्रवाह से हट जाना या अपने में ही संकुचित हो जाना मूल्यों का नाश करना है।

दर्शन शिक्षा के सफल प्रयोगों की पृष्ठभूमि है। प्रायः यह माना जाता है कि दर्शन शिक्षा का प्रेरक है किन्तु प्रयोजनवादी शिक्षा को दर्शन से प्रेरणा मिलती है ऐसा नहीं मानते। इसके विपरीत वे मानते हैं कि दर्शन को शिक्षा से प्रेरणा मिलती है। नवीन समाज का उद्देश्य शिक्षा का मुख्य कार्य है। समाज केन्द्रित शिक्षा ही उचित है। शिक्षा समाज की आशाओं का केन्द्र है जो जीवन को और सफल बनायेंगी। जब यथार्थ ही परिवर्तनशील है तो विकास तथा वृद्धि ही शिक्षा के उचित उद्देश्य हो सकते हैं। वृद्धि या विकास की जानकारी हमें वे नहीं देते क्योंकि उनकी राय में यह प्रश्न ही अनुचित है। कारण स्पष्ट है गति परिवर्तन तथा क्रय की नींव पर आश्रित वृद्धि को किसी उद्देश्य में बाँधा नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं–

1. शिक्षा में पूर्व निर्धारित उद्देश्य उचित नहीं।

2. गतिशील यथार्थ मानकर केवल वृद्धि को ही शिक्षा का उद्देश्य माना जा सकता है।

3. जीवन और शिक्षा दोनों शब्दों का एक ही कार्य है।

<u>प्रयोजनवाद का आधुनिक शिक्षा पर प्रभाव</u> :–

दर्शन के रूप में नहीं वरन् व्यवहार के रूप में प्रयोजनवाद ने आधुनिक शिक्षा पर बहुत प्रभाव डाला है। शिक्षा एक व्यावहारिक कला है और व्यावहारिक दृष्टि से प्रयोजनवाद शिक्षा से पुनः निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

1. शिक्षा व्यापक रूप से विकास वृद्धि या व्यवहार परिवर्तन का रूप लेती है।

2. शिक्षा के निकट के उद्देश्य बहुत महत्व रखते हो और उनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण विधियाँ प्रगतिशील हो।

3. शिक्षा जीवन केन्द्रित हो और एक प्रगतिशील समाज में वह भी प्रगति का परिचय दे।

4. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है और समाज का पोषण है।

5. समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए स्थापित करता है। अतः शिक्षण संस्थाएं समाज का बंधु रूप है।

6. जनतंत्रीय समाज के लिये जनतंत्रीय शिक्षा की आवश्यकता है।

7. ज्ञान की उत्पत्ति क्रिया से होती है, क्रिया प्रधान है असफलतापूर्वक क्रिया का सम्पादन करने के लिए वह ज्ञान आता है और बालक क्रिया द्वारा सीखता है।

8. शिक्षा बालक नैसर्गिक प्रवृत्तियों, रुचियों, शक्तियों आदि को केन्द्र बनाकर दी जायें परंतु उसको साथ ही साथ सामाजिक रूप भी दिया जाये। बालक अपने हित के साथ–साथ समाज का हित करने की क्षमता भी सीख ले।

इस प्रकार प्रयोगवाद ने अनिवार्य सामान्य शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के सन्दर्भ में बढ़ावा दिया। शैक्षिक जागरुकता भी महत्वपूर्ण देन है।

अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद दर्शन शास्त्र का एक अन्य सम्प्रदाय है, जिसने शिक्षा के सिद्धांत पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इस सम्प्रदाय की जड़े सुकरात के इस वाक्य से खोजी जा सकती है कि "अपने आपको जानो" और इस कथन में कि 'बिना परीक्षण किया हुआ जीवन जीने की लायक नहीं है।'

हम अस्तित्वाद की विचारधारा को अच्छी प्रकार से समझने के लिए इसके प्रतिपादकों के दर्शन पर प्रकाश डालेंगे। यह भी देखेंगे कि अस्तित्वाद ऐतिहासिक रूप से किस प्रकार विकसित हुआ।

क्यीर केगार्ड के अनुसार – क्यीर केगार्ड व्यक्ति के मूल व्यक्तिगत अस्तित्व पर बल देता है। उसके अनुसार वह पूरे जोश से अपने अस्तित्व में सन्निहित है।

सत्य व्यक्ति के अपने अद्वितीय अनुभव मे पाया जाता है। धार्मिक सत्य कभी भी केवल तर्क से प्राप्त नही हो सकता। इस अर्थ में यह व्यक्तिगत है क्योंकि व्यक्ति सदैव अकेला ही होता है उसका अस्तित्व उसके आधारभूत से पहले हैं। क्यीर केगार्ड मानव की मूल दशा निराशा को पाता है। यह एक सार्वभौमिक दशा है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नही है जो निराशा से बाहर हो। एक ही इसका अपवाद हो सकता है वह है–एक सच्चा ईसाई क्यीर केगार्ड निराशा को इन शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। क्षुब्धता एक व्याकुलता, एक असमंजस्य, किसी अनजानी वस्तु का चिंतायुक्त भय या उसका, जिसके साथ वह पहचान करने का साहस भी नहीं कर सकता।

निराशा ऐसी बीमारी है जो मृत्यु तक चलती है। किंतु निराशा का दर्द तोयह है कि व्यक्ति मर नहीं पाता।

क्यीर केगार्ड के अनुसार निराशा तीन रूप ले लेती है–

1. निराशा इस बात में कि आत्म की चेतना प्राप्त नहीं होती।

2. निराशा इस बात में कि अपने आप मे होने की इच्छा नहीं होती।

3. निराशा इस बात में कि अपने आप में होने कि इच्छा होना।

क्यीर केगार्ड की जो मूल एवं अत्यंत महत्वपूर्ण देन अस्तित्ववाद दर्शन के लिए है उसे हम तीन मुख्य वर्गों मे संक्षेपीकरण कर सकते हैं।

1. इस बात पर आग्रह कि व्यक्ति को चयन करने की पूर्ण स्वतंत्रता मिले और वह जो बनना चाहता है वह बनने के लिए स्वतंत्र हो। इस प्रकार वह नियतिवाद को बिल्कुल नही मानता और सार को अस्तित्व के उपर नही समझता।

2. वह ईसाई धर्म को संस्थात्मक बानने के विरुद्ध है। उसके अनुसार चर्च प्रभावशाली ढ़ग से आदमी को परमात्मा से सीधा सम्पर्क करने से रोकता है। सच्चा धार्मिक अनुभव तो सीधा सम्पर्क ही है।

3. उसका यह विचार है कि मानव दशा निराशा की तथा चिंता की है, जिसकी जड़ मे यह आवश्यकता निहित है जो एक ऐसे संसार में, जो पूर्णरूप से अनिधरित है, विकल्प चुनने के लिये बाध्यता प्रदान करती हैं। नीटशे – नीटशे की विचारधारा में तीन मूल तत्वों का समावेश है। ये हैं–1. नास्तिकवाद 2. नीति विषयक सापेक्षवाद 3. शक्ति प्राप्त करने की इच्छा।

नीटशे का कहना है कि ''ईश्वर की मृत्यु हो चुकी है और हमने उसे मार डाला है।'' हमने ईश्वर को तर्क से युक्तिपूर्ण दर्शन से तथा युक्तिपूर्ण विज्ञान से मारा है। हमने उसको मारा है अपनी वस्तुनिष्ठ सच्चाई के मिथ्याभिमान से क्यीर केगार्ड का विश्वास था कि ईश्वर का अतित्व है और उसे पहचाना जा सकता है। यद्यपि उस औपचारिक ढ़ग से नही जो कि चर्च प्रस्तवित करता है। नीटशे इस विचार से आगे जाता है और यह कहता है कि धर्म समाप्त हो गया है। क्योकि ईश्वर की मृत्यु हो चुकी है। अब आगे से प्रत्येक अपने आप पर ही निर्भर हैं। नीटशे का विश्वास था कि ईश्वर की मृत्यु एक नये ऐतिहासिक काल के प्रारंभ होने का तथा नये आदमी के प्रकट होने का संकेत देती हैं।

हीडेगार – हीडेगार ने जीव सम्बंधी दार्शनिक समस्या को समझने की चेष्टा की। उसके अनुसार मानव ही केवल अस्तित्व रखता हैं। दूसरे प्राणी तथा वस्तुएं संसार मे है तो अवश्य किंतु उनका अस्तित्व नही है। ऐसा इस कारण है कि केवल मानव मे ही चेतना हैं।

मानव प्रामाणिक रूप से अस्तित्व रख सकता है, किंतु ऐसा वह केवल कुछ विशेष प्रकार के अनुभवों को प्राप्त करके ही कर सकता है, जिनमें वह अपने सम्बंध अनुभूत करता है कि वह है जो अस्तित्व रखता है। मूल रूप से यह अनुभव उस प्रकार के हैं जिन्हें क्यीर केगार्ड ने व्यथा या चिंता कहा है।

व्यथा के अनुभव मे व्यक्ति अपने आप को जैसा है वैसा देखता है। वह संसार मे है किन्तु उसे यह नहीं पता कि वह वहाँ क्यों है। ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है, परिणामस्वरूप मानव का अस्तित्व सूना है।

हीडेगार इस बात पर बल देता है कि मानव का अस्तित्व सूना है। सीमित हैं। कुछ समय के लिये सब चीजें संभव है किंतु यह समय समाप्त हो जाता हैं। क्योकि मानव का अस्तित्व नश्वरवान हैं। मृत्यु सब संभावनाओं का अतं कर देती है तथा सब मानवों को मरना है। वह प्रमाणिक व्यक्ति है जोकि दृढ़ भाव से इस तथ्य का सामना है करता है कि उसका अस्तित्व एक मृत्यु के लिये जीव का है।

सात्रे – नीटशे तथा हीडेगार की भाँति ही सात्रे भी वास्तिक है। उसके लिये मानव चिंता की जड़े इस तथ्य मे हैं कि मानव जीवित है उसको चुनाव करना और वह ईश्वर को नही पाता। जिसके उपर वह अपने उत्तरदायित्व को थोप दे। सात्रे कहता है कि ईश्वर का नही होता अस्तित्व वादियों के लिये प्रसन्नता का विषय नही है और वह इसको हटाने के लिये कोई गिरी हुई चाल नही चलते। सात्रे के विचार मे शायद यह कुछ रूपों मे अच्छा

होता यदि ईश्वर का अस्तित्व होता। उसका अस्तित्व एक ऐसे संसार को संभव बनाता जिसमें स्थायी तथा विश्वासी मूल्य होते है।

सात्रे भी जीव के दर्शन पर प्रकाश डालता है। वह दो प्रकार के जीव में विभेद करता है। जीव स्वयं मे तथा जीव स्वयं के लिये। जीव स्वयं में से तात्पर्य है। वस्तुओं का आत्म अन्तर्दिष्ट जीव। हम साधारण भाषा मे पेड़, पत्थर, कुर्सी, मेज इत्यादि को वस्तुएँ कहते हैं।

अस्तित्ववाद का दर्शन

अस्तित्ववाद के दर्शन की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

मानव की स्थिति – आज के संसार में मानव की स्थिति क्या है? अस्तित्व यह मानते हैं कि मानव का होना ही निराशापूर्ण है। मानव अनुभव व्यथा के है। यह दशा शायद सदैव रही हो पर आज के संसार में कुछ घटनाएँ जैसे—महायुद्ध, लाचारों पर अत्याचार इत्यादि ऐसी हुई हैं जिन्होंने इस अनुभव की तीव्रता में वृद्धि कर दी है। आज की मानव स्थिति के संबंध में दो बातें कही जा सकती है। पहली हमारी यह जानकारी कि हमारा अस्तित्व अनिश्चित है और दूसरी यह कि मानव अस्तित्व में विशिष्टता अन्तर्निहित है। अब हम इन दोनों विचारों पर कुछ और प्रकाश डालेंगे।

जब हम यह कहते हैं कि कोई वस्तु या घटना अनिश्चित है तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि यह है भी और नहीं भी। ऐसा कुछ भी नहीं है जो अस्तित्व को आवश्यक बना दें। अस्तित्वादी इस बात पर बल देते हैं कि अनिश्चित को कम महत्व देना एक बड़ी त्रुटि होगी क्योंकि हमारी जानकारी में यह वस्तुओं की प्रकृति ही है। सत्य तो यह है कि संसार का अस्तित्व और मानव का अस्तित्व अर्थहीन है।

अस्तित्वाद एवं शिक्षा – अस्तिववाद के प्रमुख प्रवर्तकों ने शिक्षा के सम्बंध में बहुत कम विचार प्रकट किये है। इसके शिक्षा के लिये क्या संकेत हैं इन पर भी कम ही साहित्य मिलता है। दार्शनिकों ने बहुत अधिक इस ओर ध्यान नही दिया है कि अस्तित्ववाद किस प्रकार से शिक्षा की रूपरेखा में परिवर्तन ला सकता है। किंतु इसमे सदेह नही कि अस्तित्ववाद मे बहुत कुछ ऐसा है कि जो संबंध मे महत्वपूर्ण हैं। हम यहाँ अब इस ओर ही ध्यान देंगे।

अस्तित्ववाद के दर्शन का यह लक्ष्य है कि मानव अस्तित्व के मूल चारित्र का विश्लेषण किया जाये और मानव का ध्यान उसकी स्वतंत्रता की ओर दिलाया जाये। अतएव यह दर्शन इस ओर ही शिक्षा की प्रकिया पर बल देता है। इसका प्रायोगिक पक्ष यह है कि पाठ्यक्रम शिक्षक की भूमिका तथा शिक्षण विधियाँ सब इस प्रकार से निर्धारित की जायें कि अस्तित्ववाद का जो यह मानव संबंधी लक्ष्य है वह प्राप्त किया जा सके।

हम शिक्षा के उद्देश्य के संबंध में कह सकते है कि शिक्षा को विद्यार्थियों को इस ओर सहायता देनी चाहिए कि वह अपने में वह बन जायें जो वह बनना चाहते हैं।

शिक्षा के उद्देश्य जो अस्तित्ववाद के दर्शन में निहित है उनको प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम का चयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों को उदार शिक्षा मिले।

अस्तित्ववाद शिक्षण मे सुकरात विधि पर बल देते है। सुकरात एक प्रामाणिक व्यक्ति का बहुत अच्छा उदाहरण हैं। इसका मानववाद का दर्शन तथा उसका यह प्रतिपादन कि आदमी को केन्द्र मानकर ही खोजबीन होनी चाहिए अस्तित्ववाद के दर्शन मे महत्वपूर्ण स्थान रखाता है।

शिक्षक–विद्यार्थी सम्बंधों के उपर अस्तित्ववादी बहुत बल देते हैं। उनके अनुसार विद्यार्थी शिक्षक संबंध अधिक व्यक्तिगत होने चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार जो शिक्षा में वास्तव मे महत्व की चीज है वह संबंध है जो विद्यार्थी और शिक्षक के बीच मे स्थापित होते हैं।

शिक्षा के उदेश्य :–

अस्तित्ववादी शिक्षा के उदेश्य के सम्बंध में निम्न बातों पर बल देते हैं–

1. विद्यार्थी को स्वयं को समझना चाहिए।
2. शिक्षा द्वारा पूर्ण मानव का विकास किया जाये।
3. व्यक्तित्व का पूर्ण विकास किया जाये।
4. विद्यार्थी की व्यक्तिगत रूचि तथा रूझान को महत्व दिया जायें।

शिक्षा का संदर्भ

शिक्षा प्रदान करते समय यह बात मान लेनी चाहिए कि जिस संसार मे विद्यार्थी सांस ले रहा वह ही उसके लिए सब कुछ है। परलोक के लिए शिक्षा या विद्यार्थी को किसी अन्य आने वाले भविष्य के लिए तैयार करना व्यर्थ है। उसको इस संसार मे जीवित रहना है और इस जीवन के लिए ही उसे शिक्षा देनी है। अस्तित्ववाद वातावरण को बहुत महत्व देता है। उसके अनुसार वातावरण ही शिक्षा का मुख्य साधन है। उसके चहुँ ओर का वास्तविक संसार ही उसके आत्म बोध को विकसित करता है।

विद्यार्थी :–

विद्यार्थी को स्वयं अपने अस्तित्व सम्बंधी निर्णय लेने चाहिए। उसका व्यक्तिगत विकास होना चाहिए। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उसे अपने व्यक्तिगत या आत्म के सम्बंध में चेतनाशील बनायें। उसमें आत्म विश्वास और अपने निर्णय आप लेने की क्षमता जाग्रत करनी चाहिए।

शिक्षक :–

शिक्षक को मैं तुम सम्बंध विद्यार्थी के साथ स्थापित करने चाहिए। इससे तात्यर्य है कि विद्यार्थी और शिक्षक मे सीधे सरल और व्यक्तिगत संबंध होने चाहिए। शिक्षक को बालकों का पथ प्रदर्शन करना चाहिए कि वह अपने आत्म के प्रति वफादार बन सके।

पाठ्यक्रम :–

ऐसे विषयों को पाठ्यक्रम मे नही रखना चाहिए जिनका अपने आप में कोई मूल्य नही है। यथार्थवादी किसी भी ऐसे पाठ्य विषय का विरोध करते है जोकि मानव आकांक्षाओं, आवश्यकताओं एवं स्थितियों से असम्बंधित हैं। उनका कहना है कि गणित, विज्ञान या साहित्य मे कोई आंतरिक मूल्य नही हैं।

अस्तित्ववाद की शिक्षा में देन

शिक्षा के क्षेत्र में इस दर्शन ने बालक को अपने अनुभवों से सीखने पर बल दिया इस प्रकार यह दर्शन बाल केन्द्रित शिक्षा का समर्थक है।

यथार्थवाद :–

यथार्थवाद शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द Realism का हिन्दी रूपांतर है। Real शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के त्मे शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ 'वस्तु' है। अतः Realism का अर्थ वस्तु सम्बधीं विचारधारा से है।

अर्थ :–

'यथार्थवाद' वस्तु के अस्तित्व सम्बंधी विचारों के प्रति एक दृष्टिकोण है जो प्रत्यक्ष जगत को सत्य मानता है। आदर्शवाद के अनुसार सत्य का निवास–मानव मस्तिष्क में ये है पर यथार्थवाद के अनुसार इसका आवास–भौतिक जगत की वास्तविक वस्तुओं और घटनाओं मे है वर्षा होती है, सूर्य चमकता है ऋतुओं मे परिवर्तन होता है, पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है ये सब घटनाएँ सत्य है चाहे हमको इनका ज्ञान हो या नही।

परिभाषा :–

स्वामी रामतीर्थ के अनुसार – यथार्थवाद का अर्थ वह विश्वास या सिद्धांत है जो जगत को वैसा स्वीकार करता है जैसा कि हमें दिखायी देता है।

ब्राउन के अनुसार – यथार्थवाद का मुख्य विचार यह है कि सब भौतिक वस्तुएँ या बाध्य जगत के पदार्थ वास्तविक है और उनका अस्तित्व देखाने वालों से पृथक है। यदि उनको देखने वाले व्यक्ति न हों तो भी उनका असतित्व होगा और वे वास्तविक होंगे।

नेफ के अनुसार – यथार्थवाद, आत्मगत, आदर्शवाद का प्रतिकार है जो सत्य का निवास, मानव मस्तिष्क में मानत है। सब यथार्थवादी इस बात से सहमत हैं कि सत्य और वास्तविक का अस्तित्व है और रहेगा, भले ही किसी व्यक्ति को उनके अस्तित्व का ज्ञान न हो।

यथार्थ के मूल सिद्धांत

दृश्य जगत ही सत्य है – यथार्थवादियों का सिद्धांत है कि जगत में हम जो कुछ देखते हैं सुनने या अनुभव करते हैं वे सब हमारे समक्ष प्रत्यय रूप में होते हैं। अतः जो

कुछ प्रत्यक्ष है वही सत्य है। इस जगत की सत्यता विचारों के कारण नहीं है, वरन् उसका अस्तित्व स्वयं में हैं क्योंकि वह प्रत्यक्ष है जो प्रत्यक्ष है उसका अस्तित्व है।

<u>आंशिक सिद्धांत</u> – प्रसिद्ध यथार्थवादी हाइटहैड का विचार है कि संसार की चर–अचर प्रत्येक वस्तु समष्टि का एक अंग है। समस्त अवयवों में सम्मिलित रूप से तरंगित प्रक्रिया हो रही है जिसके परिणाम स्वरूप परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। इस परिवर्तनशीलता के कारण जगत् के समस्त तत्वों, विचारों एवं नियमों में अनवरत परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार, इस सिद्धांत के समर्थक वैज्ञानिक नियमों को शाश्वत नहीं मानते हैं। वरन् परिवर्तनशील स्वीकार करते हैं यही वह बिन्दु हैं जहाँ यथार्थवाद भौतिकवाद से भिन्न हो जाता है। क्योंकि भौतिकवाद के अनुसार वैज्ञानिक नियम स्थिर एवं शाश्वत माने जाते हैं।

<u>इन्द्रियाँ ज्ञान के द्वार हैं</u> – यथार्थवादियों के अनुसार सच्चे ज्ञान की प्राप्ति केवल इन्द्रियाँ द्वारा ही होती हैं। किसी वस्तु की जानकारी हम इन्द्रियों द्वारा देखकर, सूंघकर, चखकर या स्पर्श करके प्रात करते हैं। इन्द्रियों एवं वस्तुओं के सम्पर्क के फलस्वरूप हमें जो संवेदना होती है। यह साथ वास्तविकता है। रसेल के अनुसार पदार्थ के अन्तिम निर्णायक तत्व अणु नहीं हैं, वरन् संवेदनहैं, मेरा विश्वास है कि हमारे मानसिक जीवन के रचनात्मक तत्व पूर्णतः संवेदनाओं और प्रतिमाओं में निहित होते हैं।

<u>वस्तु जगत में नियमितता</u> – यथार्थवादी वस्तु जगत में नियमितता को स्वीकार करते हैं। इसी कारण उनका दृष्टिकोण यांत्रिक बन जाता है। जिसके परिणामस्वरूप वे मन का भी यंत्रिक ढंग से क्रियाशील मानते हैं। यथार्थवादियों की यह धारणा इस बात पर आधारित है। अनुभव और ज्ञान के लिए नियमितता का होना परमावश्यक है।

<u>यथार्थवाद, पारलौकिकता को अस्वीकार करता है</u> – यथार्थवाद प्रत्यक्ष जगत् को ही सब कुछ मानता है। इसके अनुसार इस लोक से परे कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं वस्तुनिष्ठा पर बल देता है। वस्तुतः यथार्थवाद अपनी प्रक्रिया में वैज्ञानिक हैं।

<u>मानव के वर्तमान व व्यावहारिक जीवन पर बल</u> – रस्क के अनुसार ''नव यथार्थवाद का उद्देश्य का ऐसे दर्शन का प्रतिपादन करना है जो सामान्य जीवन के तत्वों तथा भौतिक विज्ञान के विकास प्रतिपादन करता है, जो सामान्य जीवन के तथ्यों तथाभौतिक विज्ञान के विकास के अनुकूल है। '' यथार्थवादी उन आदर्शो, नियमों एवं मूल्यों को कोई महत्व नहीं देते हैं जिनका समबंध वर्तमान एवं व्यावहारिकता से नहीं है।

<u>यथार्थवाद के रूप</u>

1. **<u>सरल यथार्थवाद</u>** – यथार्थवाद का यह रूप अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। मानव अपने समक्ष की वस्तुओं में विश्वास रखता है। यही इस रूप का प्रमुख आधार है। इसी विश्वास के आधार पर मनुष्य अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति रिवाजों का निर्माण करता है।

2. **<u>नव यथार्थवाद</u>** – नव यथार्थवाद का विकास एक नियोजित दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में हुआ। वस्तुतः इसके विकास में विज्ञान ने बहुत सहयोग दिया। यह रूप, ज्ञान के

सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। नव–यथार्थवाद ने आदर्शवाद का खण्डन करके अपना पृथक ज्ञान शास्त्र बनाया।

3. **<u>आलोचनात्मक यथार्थवाद</u>** – यथार्थवाद के इस रूप का विकास नव यथार्थवाद की आलोचना के कारण हुआ। यह रूप इस बात में आस्था रखता है। कि ज्ञाता का मन जब बाह्य विचारों को ग्रहण करता है तब बाह्य वस्तुओं का अपना स्वतंत्र अस्तित्व मानता है।

<u>यथार्थवादी शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ</u> :–

रॉस के अनुसार जिस प्रकार प्रकृतिवाद, शिक्षा के क्षेत्र में बनावरी प्रशिक्षण पद्धतियों के विरोध स्वरूप उपस्थित हुआ है, उसी प्रकार यथार्थवाद् उस पाठ्यक्रम के विरोध में आया है जो पुस्तकीय, अवास्तविक एवं जटिल हो गया है।

1. **<u>विस्तृत व व्यावहारिक पाठ्यक्रम</u>** – गुड के अनुसार विस्तृत पाठ्यक्रम यथार्थवाद की एक प्रमुख विशेषता थी। 17वीं शताब्दी के यथार्थवादियों हेतु यह अस्वाभाविक ही था। कि वे 25 या 80 विषयों के अध्ययन का प्रस्ताव प्रस्तुत करें जिनमें लैटिन फ्रेंच और वर्नाक्यूलर जैसी दो या तीन भाषाएँ गणित की दो या तीन शाखाएँ, कई सामाजिक अध्ययन के विषय, बहुत से विज्ञान, दार्शनिक, सैन्य सम्बंधी और व्यावसायिक तथा शिष्टाचार सम्बंधी विभिन्न विषय हों।

2. **<u>प्राकृतिक तत्वों व सामाजिक संस्थाओं का महत्व</u>** – यथार्थवादी शिक्षा में विषयों की अपेक्षा प्राकृतिक तत्वों एवं सामाजिक संस्थाओं को महत्व प्रदान किया गया। पॉल मुनरो ने लिखा है–शिक्षा में यथार्थवाद उस प्रकार की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जिसमें भाषाओं और साहित्य की अपेक्षा प्राकृतिक घटनाओं और सामाजिक संस्थाओं को अध्ययन का मुख्य विषय बनाया जाता है।

3. **<u>इन्द्रियाँ ज्ञान के प्रमुख द्वार हैं</u>** – यथार्थवाद के अनुसार इन्द्रियाँ ही ज्ञान के प्रमुख द्वार है इस प्रकार इसने इन्द्रियों पर बल देकर शिक्षा में सहायक सामग्री तथा दृश्य–श्रव्य साधनों के प्रयोग एवं महत्व को बढ़ाया।

4. **<u>उदार शिक्षा पर बल</u>** – यथार्थवाद ने उदार शिक्षा पर बल दिया। मानववादी यथार्थवाद के समर्थक मिल्टन के अनुसार मैं उस शिक्षा को पूर्ण एवं उदार शिक्षा कहता हूँ जो एक व्यक्ति को न्यायोचित ढंग से कुशलतापूर्वक तथा उदारता के साथ निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के सभी कार्यों को शांति तथा युद्ध के समय पूर्ण करने के योग्य बनाती है।

5. **<u>व्यावसायिक शिक्षा पर बल</u>** – यथार्थवाद, उदार शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक शिक्षा पर बल देता है। डेविनपोर्ट का कथन है कोई भी व्यक्ति किसी व्यवसाय के बिना शिक्षा का चयन न करें और न बिना शिक्षा के व्यवसाय का चयन करें।

<u>यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा</u>

यथार्थवाद ने शिक्षा को विकास की प्रक्रिया माना। उनके शब्दों में– ''सामाजिक एवम् वैयष्टिक शक्तियों को पुनर्जीवित करने की प्रक्रिया ही शिक्षा है।''

<u>यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य</u> :–

1. वास्तविक जीवन की तैयारी

2. छात्रों की शारीरिक विकास करना एवम् इन्द्रियों के विकास का प्रशिक्षण देना।

3. नैतिक, चारित्रिक एवम् सामाजिक विकास के साथ व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित करना।

4. प्राकृतिक एवम् सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान करना।

5. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना।

6. मानसिक विकास करना।

<u>यथार्थवाद के अनुसार पाठ्यक्रम</u> :–

उन्हें सभी पाठ्यक्रमों के सह सम्बंधों पर जोर दिया। उन्हेनि वैज्ञानिक, सामाजिक, कला कौशल, भाषा, साहित्य सम्बंधी विषयों के ज्ञान प्रदान करने का उल्लेख किया। जिससे भाषाएँ, साहित्य, कलायें, कौशल एवं हस्त कार्य, प्राकृतिक विज्ञान, राजनीति विज्ञान, गृहशास्त्र, गणित, इतिहास, धर्म, शिक्षा, भूगोल आदि विषयों को सम्मिलित किया। जिसके साथ श्रृव्य–दृश्य साधनों के प्रयोग पर बल देता है।

<u>यथार्थवाद के अनुसार शिक्षा विधि</u> – यथार्थवादी शिक्षण में निरीक्षण, प्रदर्शन, विश्लेषण, आगमन, हयूस्टिक पद्धति, सहसम्बंध विधि प्रयोगात्मक विधियों के प्रयोग पर बल दिया।

<u>यथार्थवाद के अनुसार शिवाफ</u>– यथार्थवाद ने शिक्षक को महत्वपूर्ण बताया है। वह केवल पथ–प्रदर्शक के रूप में कार्य करें और उन्हें प्रशिक्षित करने पर जोर देता है और अध्यापक को यह जानना चाहिए कि 'किसको''किस समय' और 'कितना' पढ़ाना चाहिए।

<u>यथार्थवाद का शिक्षा पर प्रभाव</u> – यथार्थवाद ने ''ज्ञान जीवन के लिये'' का नारा लगाया और जीवन के रोटी, कपड़ा, मकान की समस्या सुलझाने के लिये शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास के लिये शिक्षा का महत्वपूर्ण माना। पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को महत्वपूर्ण माना। वे शिक्षक के महत्व को मानते हैं और अपेक्षा करते हैं कि अध्यापक बच्चों का मार्गदर्शन करें। और शिक्षार्थी को शिक्षा का केन्द्र मानते हैं। विद्यालयों में शारीरिक दण्ड का विरोध करते हैं उन्होंने वैयक्तिक शिक्षा पर जोर दिया जिससे व्यक्ति की अधिक महत्व मिले लेकिन शिक्षा को एक सामाजिक संस्था के रूप में माना।

<u>तार्किक प्रत्यक्षवाद</u>

तार्किक प्रत्यक्षवाद के अनुसार सत्य का प्रमाण अनुभव ही होता है। जो प्रत्यक्ष है वह भी अनुभव द्वारा ही प्रमाणित होता है। यह सम्प्रदाय केवल इन्द्रिय अनुभव को ही प्रमाण मानता है।

तार्किक अनुभववाद के मुख्य प्रवर्तक कामटे महोदय है। इसके अन्य प्रवर्तक यथार्थवादी अनुभववादी तथा विज्ञानवादी है। इन्होने एक ऐसे दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया जो दर्शन के अध्ययन के लिए एक नवीन विधि पर बल देता है। यह दार्शनिक पुरानी दर्शन विधि की आलोचना करते है। नवीन विधि भाषा विश्लेषण तथा तार्किक विश्लेषण पर केन्द्रित है। इस विधि के अनुसार सत्य का परीक्षण तथ्य प्रमाणीकरण के आधार पर किया जाता है। इन दार्शनिको का मत था कि दार्शनिक समस्याओं का हल हमें तथ्य परीक्षण तथा विश्लेषण की विधियों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। भाषा विश्लेषण जिसमें अर्थ स्पष्टीकरण किया जाता है। उस पर प्रत्यक्षवाद बल देता है।

प्रत्यक्षवाद दर्शन परम्परागत दर्शन को उपयुक्त नही मानता है। उसके अनुसार परम्परागत दर्शन कल्पनात्मक है। वह प्रत्यक्ष संसार तथा उसकी अनेक वस्तुओं को झूठा मानता है और यह प्रतिपादित करता है कि सत्य तथा यथार्थ वास्तव मे अनुभव पर निर्भर नही है वरन् यह अनुभव से परे हैं। उन्होने अनुभव से परे सत्ता को परम सत्ता, ईश्वर तथा ब्रह्म आदि का नाम दिया जिस तक पहुँचना मानव जीवन का परम लक्ष्य है, किंतु प्रत्यक्षवादी प्रत्यक्ष अनुभव के अतिरिक्त किसी सत्ता के असतित्व को नहीं मानते। वह तर्कशास्त्र को मान्यता देते हैं। किंतु वह शुद्ध निगमन को छोड़कर आगमन को महत्व देते है।

तार्किक प्रत्यक्षवाद एक दार्शनिक विचारधारा तथा विधि है। यह कल्पनात्मक दर्शन का खंडन करती है यह भाषागत तथा तार्किक विश्लेषण की विधि को अपनाती है। यह अपनी प्रकृति मे वैज्ञानिक है।

तार्किक प्रत्यक्षवाद का विकास

यह दर्शन पिछले साठ–सत्तर वर्षों में ही विकसित हुआ है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि यह विचारधारा दर्शन शास्त्र के विकास के प्रारम्भिक वर्षों में भी विद्यमान थी।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने की धारणा आगस्ट कामटे द्वारा स्पष्ट की गयी। उन्होंने प्रत्यक्ष जगत को माना तथाइस बात का खण्डन किया कि कोई अलौकिक सत्ता का असतित्व है।

सन् 1920 में कुछ अस्ट्रिया तथा जर्मनी के दार्शनिकों ने वियाना सभा नामक संस्था की स्थापना की जिसके द्वारा प्रतिपादित दर्शन को तार्किक प्रत्यक्षवाद या तार्किक अनुभववाद तथा वैज्ञानिक अनुभववाद के नाम से पुकारा जाने लगा। यह सम्प्रदाय दर्शन का कार्य ज्ञान प्राप्त करना नहीं बताता। इसके अनुसार ज्ञान प्राप्त करने का कार्य सारे विज्ञान करते हैं।

इस सम्प्रदाय के अन्य प्रर्वतक थे मूर, रसल तथा विटिंगसटीन। यह इग्लैंड के निवासी थें तथा इन्होंने तार्किक विश्लेषण की विधि का दर्शन में प्रयोग किया। आधुनिक तार्किक प्रत्यक्षवादी इस बात पर बल देते हैं कि बहुत सी दार्शनिक समस्यायें केवल भाषाके साथ संबंध रखती है। इनका हल भी भाषा विश्लेषण विधि द्वारा जिसमें शब्दों, धारणाओं इत्यादि के अर्थों को स्पष्ट किया जाता है सम्भव है।

विश्लेषणात्मक विधि :–

वेटिंग सटीन का कहना है कि क्योंकि सब दार्शनिक कथन भाषायी संभ्रांति के कारण उत्पन्न होते हैं, इस कारण इनका हल भी केवल भाषागत विश्लेषण द्वारा ही प्रदान होगा।

भाषागत विश्लेषण की विधि को समझने के लिये दर्शन की विधियों संश्लेषण तथा विश्लेषण को समझना आवश्यक है। इन दोनों विधियों का दर्शन में प्रयोग होता है।

संश्लेषण भागों को संयुक्त करके एक पूर्ण बनाने की प्रक्रिया है। इस विधि का प्रयोग प्लेटो तथा अन्य दार्शनिकों ने किया। इन सबने यह विचार सामने रखा कि दर्शन का कार्य विभिन्न प्रकार के ज्ञात को संयुक्त करके समग्र ज्ञान की प्रणाली तैयार करना तथा उसके सम्बंध में निष्कर्ष निकालना है। प्रत्यक्षवादी इस धारणासे सहमत नहीं है। उनके अनुसार दर्शन का कार्य प्राप्ति नहीं है। दर्शन तथ्यों से कोई सरोकार नहीं रखता द्य दर्शन जिन तर्क वाक्यों का प्रयोग करता है। वह परिभाषायें ही है। इस कारण ही यह विश्लेषणात्मक है।

विश्लेषणात्मक दर्शन तथा शिक्षा :–

औजमान तथा क्रेपर का कहना है कि ''यदि हमें किसी सरल एकीकरण विषय का विश्लेषणात्मक दर्शन में पता लगाना है तो यह होगा स्पष्टीकरण।'' विश्लेषणात्मक दर्शन में यह मान्यता निहित है निहित है कि पूर्व की अधिकतर दार्शनिक समस्यायें वास्तव में अंतिम यथार्थता या सत्य, सुन्दर तथा शिव की समस्यायें नही थी वरन् भ्रमात्मक भाषा की समस्यायें थी, जो अस्पष्ट अर्थो में शुथ वहां गई थी।

तार्किक विश्लेषण एक दर्शन की विधि होने के कारण इसने कोई भी विचारों की व्यवस्था था ब्रम्हाण के सम्बंध में किसी मान्यता का निर्माण नहीं किया है। वास्तव में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक किसी भी प्रकार के व्यवस्थीकरण के विरुद्ध है।

निम्नलिखित विचार इस सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित है, जिनका प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है।

1. संसार के सम्बंध में तत्व मीमांसा सम्बंधी कथन न सत्य है न असत्य वरन् असंगत है। संसार यथार्थ है। भाषायी विश्लेषणकर्ता संसार को संवेदनात्मक अनुभव के अंतर्गत मानते हैं या ऐसा समझते हैं जो कि तार्किक रूप से प्रमाणिक है।

2. विश्लेषणात्मक विधि ही केवल ऐसी विधि है,जिसके द्वारा यथार्थता का वर्णन किया जा सकता है।

तार्किक विश्लेषण का प्रभाव शिक्षा पर यह पड़ा है। कि शिक्षा के संदर्भ में जिन अवधारणाओं परिभाषाओं मान्यताओं, नारों इत्याद का प्रयोग किया जाता है। उनका परीक्षण किया जाने लगा। जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उनका विश्लेषण किया जाता है।

यूनिट–चतुर्थ
स्वामी विवेकानंद के शिक्षा संबंधी विचार

जीवन परिचय :–

विवेकानन्द का जन्म सन् 1863 ई. में कलकत्ता नगर में हुआ था। इनका पूर्व नाम नरेन्द्र दत्त था। ये अत्यंत प्रतिभाशाली छात्र थे। इस प्रतिभाशाली नरेन्द्र दत्त ने अपने प्रधानाचार्य मिस्टर हेस्टी से प्रेरित होकर दक्षिणेश्वर की यात्रा की। इस मंदिर में उनकी भेंट श्री रामकृष्ण परमहंस से हुयी। यहाँ विवेकानन्द को संतोष प्रदान हुआ। इसके पश्चात् स्वामी जी ने रामकृष्ण को अपना गुरू बना लिया। अपने गुरु की मृत्यु के उपरांत उन्हेनि उनकी शिक्षाओं का प्रसार किया।

31 मई 1983 ई. को स्वामीजी ने अमरीका के लिये प्रस्थान किया। वहाँ जाने से पूर्व उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द रखा। विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिये स्वामीजी अमेरिका गये। धर्म सभा शिकागो में दिये अपने भाषण से विश्व की जनता को प्रभावित किया।

जीवन दर्शन

स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन आज भी हमारे लिये गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक है। उनके अनुसार मनुष्य के जीवन में संघर्ष की प्रधानता होनी चाहिये। उनकी इस बात में आस्था थी कि वीर, निर्भीक एवं कर्मठ व्यक्ति ही जीवन में कोई कार्य कर सकते हैं।

स्वामी जी अत्यधिक चेतनशील थे। जिसके कारण उनकी खोज दृष्टि बहुत जल्दी ही विकसित हुई। उनके मन में अनेक प्रश्न उठते व उनकी खोज या तो वह स्वयं करते या रामकृष्ण परमहंस से सहयोग लेते।

शिक्षा दर्शन

जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द का जीवन दर्शन यर्थाथवादी एवं विस्तृत है। उसी तरह से उनका शिक्षा दर्शन भी विस्तृत एवं समन्वयवादी है। वे व्यावहारिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे कहते थे कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली मनुष्य भीरू व कायर बनाती है एवं अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं करती है। उनके अनुसार गीता समझने से पहले मनुष्य को शारीरिक रूप से सशक्त होना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए कि मनुष्य भावना से भर उठे उठो, जागो और तब तक न रुको जब तक कि अपने ध्येय की पूर्ति न कर लो। बालकों को डाँटने–फटकारने को स्वामी जी पसंद नहीं करते थे। बच्चे की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर बालक को शिक्षित किया जाना चाहिये। उनके अनुसार शिक्षक का चरित्र बहुत ऊँचा होता है। शिक्षक का कार्य मात्र बालक को अक्षर ज्ञान देना नहीं है। शिक्षक को अपना चरित्र पवित्र रखकर उसे प्रभावकारी मार्गदर्शन देना चाहिये।

स्वामी जी ऐसी शिक्षा व्यवस्था पर जोर देते हैं जिसमें आदर्शवाद, समन्वयवाद यथार्थवाद का एकत्रीकरण हो। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की पूर्णता एवं देश का नव निर्माण हो।

शिक्षा का अर्थ :–

स्वामी विवेकानन्द वेदान्त दर्शन के समर्थक थे उन्होंने देश की अज्ञानता एवं गरीबी दूर करने के लिये शिक्षा की आवश्यकता को समझा। वे मनुष्य को जन्म से ही पूर्ण मानते थे इस पूर्णता की अभिव्यक्ति को शिक्षा कहते थे। उनके अनुसार शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।

शिक्षा के उद्देश्य :–

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की पूर्णता एवं दश के नव निर्माण की भावना है। जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति से है। उनके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार से हैं–

1. मनुष्य में मानव प्रेम, समाजसेवा, विश्व चेतना और विश्व बंधुत्व की भावना का विकास करना है।

2. मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक और व्यावसायिक विकास करना।

3. मनुष्य में आत्म विकास, आत्म श्रद्धा, आत्म त्याग, आत्म नियंत्रण, आत्म निर्भरता, आत्म ज्ञान आदि अलौकिक सद्‌गुणों का विकास करना।

4. बालक का चारित्रिक, नैतिक विकास करना।

5. व्यक्ति को सर्वांगीण विकास करना।

6. राष्ट्रीयता का विकास करना और 'वसुधैव कुटुम्बकम' के आधार पर विश्व बन्धुत्व की भावना एवं एकता का विकास करना।

विवेकानन्द जी के अनुसार पाठ्‌क्रम :–

चूंकि विवेकानन्द जी शिक्षा द्वारा मनुष्य को लैकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवनों के लिये तैयार करना चाहते थे। इसलिये पाठ्यक्रम में भाषा, कला, इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र गणित, गृह विज्ञान, विज्ञान, कृषि एवं व्यावसायिक शिक्षा के साथ खेलकूद व्यवसाय, समाज सेवाकार्य, राष्ट्र सेवा कार्यो आदि विषयों स्वीकार किया है।

विवेकानन्द के अनुसार शिक्षण विधियाँ :–

उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि एकापता बतायी है। इसके लिये उपदेश देने, व्याख्यान विधि, विश्लेषणात्मक विधि एवं अनुकरण विधि योग विधि का समर्थन किया।

शिक्षक और शिक्षार्थी :–

स्वामी जी प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के समर्थक थे और शिक्षा में शिक्षक के स्थान को महत्वपूर्ण मानते थे। वे शिक्षक को बालक का मित्र, परामर्शदाता एवं पथ प्रदर्शक मानते थे

और उसे ईश्वर के समान समझते थे उनका कहना था कि अध्यापक अपने ज्ञान और आचरण से बच्चों का मार्ग दर्शन करें।

बालक को शिक्षा प्रक्रिया का प्रमुख अंग माना है उनके अनुसार छात्र गुरू गृह में रहकर ब्रम्हचार्य का पालन करते हुये अपने व्यक्तित्व का विकास करे।

स्वामी जी ने देश–विदेश में वेदान्त का प्रचार किया। उन्होंने जन शक्ति के महत्व को समझा। शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो जो बालक का सर्वांगीण विकासकर सको शिक्षार्थियों को स्वाध्याय की सलाह दी। विज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया। गुरू शिष्य के सम्बंध में स्वामी जी के विचार परम्परावादी थे। रविन्द्र नाथ टेगौर ने स्वामी के बारे में राम्या शैला से कहा कि तुम भारत के विषय में जानना चाहते हो तो विवेकानन्द का अध्ययन करो।

महात्मा गाँधी के शिक्षा सम्बंधी विचार

जीवन परिचय :–

महान् स्वतंत्रता सेनानी अहिंसा के पुजारी शिक्षा शास्त्री एवं दार्शनिक राष्ट्रपिता मोहनदास करमचंद्र गाँधी का जन्म गुजरात राज्य के पोरबंदर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर 1869 को हुआ। उनके पति राज्य के दीवान थे। उनकी माता का नाम पुतलीबाई था। जो एक अत्यंत धार्मिक महिला थी। 13 वर्ष की आयु में मोहनदास का विवाह कस्तूरबा से हुआ।

गाँधी जी की प्रारम्भिक शिक्षा पोरबंदर में हुयी। जब गाँधी जी सात वर्ष के थे तब उनके पिता दीवान होकर राजकोट गये। उनको वहाँ एक पाठशाला में दाखिल कराया गया। गाँधीजी का प्रारम्भ से ही माता–पिता की सेवा में मन लगता था। विद्यालय समय में उन्होंने 'श्रवण पितृ–भक्ति' नाटक पढ़ा एवं सत्यवादी हरिश्चन्द्र नाटक देखा जिसके फलस्वरूप उनके मन–मस्तिष्क पर सत्य का बीजारोपण सम्पूर्ण जीवन के लिये हो गया।

सन् 1885 ई. में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की और श्यामलदास कॉलेज, भावनगर में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु प्रवेश लिया। कॉलेज की शिक्षा में मन न लगने के कारण उन्होंने बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिये इंग्लैण्ड को प्रस्थान किया। 1891 ई. में बैरिस्टरी पास करके भारत आये एवं दक्षिण अफ्रीका वकालत करने गये सन् 1893 में गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका गये। वहाँ पर उन्हेनि भारतीयों की दशा सुधारने के लिये आन्दोलन चलाया। गाँधीजी ने यही सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। गाँधीजी ने यहाँ टॉलस्टाय आश्रम की स्थापना की। गाँधीजी सन् 1914 ई. में पुनः भारत आये। यहाँ आकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े एवं स्वतंत्रता आन्दोलन को एक नया रूप दिया। उनके नेतृत्व में भारत ने 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त की।

जीवन दर्शन :–

गाँधी जी जीवन दर्शन जैसा उदाहरण मानव जाति के इतिहास में दूसरा नहीं मिलता है। इनके जीवन में हमें चार महत्वपूर्ण तत्व मिलते हैं।

1. **सत्य** – गाँधी जी के सिद्धांतों में 'सत्य' सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत है। इसमें अनेक सिद्धांत निहित है। गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन सत्य के लिये एक प्रयोग है। गाँधीजी का सत्य पूर्ण सत्य है उनके अनुसार सत्य व ईश्वर एक ही बात है। विचार में सत्य, भाषण में सत्य और कार्य में सत्य होना चाहिए यदि उनका दर्शन था।

2. **अहिंसा** – महात्मा गाँधी ने अहिंसा के साथ विभिन्न प्रयोग किये एवं अहिंसा के बल पर भारत को स्वतंत्रता दिलवायी उनका अहिंसा से सम्बन्धित एक ही सिद्धांत था कि "यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चाँटा मारे तो उसके सामने अपना दूसरा गाल भी कर दो।"

3. **निर्भयता** – निर्भयता को व्यापक अर्थ देते हुये गाँधीजी ने लिखा प्रतिष्ठा है–निर्भयता का अर्थ है समस्त बाध्य भय से मुक्ति, जैसे– बीमारी का भय, खोने का भय, शारीरिक चोट का भय, मृत्यु का भय इत्यादि।

4. **सत्याग्रह** – सत्याग्रह से गाँधी जी का तात्पर्य सत्यबल का अवलंबन था। उन्होंने इसे आत्मबल से भी पुकारा था। वे अपने विरोधी पर बल प्रयोग की आज्ञा नहीं देते थे बल्कि धैर्य और सहानुभूति पूर्वक ढंग से उसे गलत मार्ग से हटाना चाहते थे।

शिक्षा दर्शन

गाँधीजी ने शिक्षा सम्बंधी विचारों ने भारतीय शिक्षा प्रणाली पर बहुत प्रभाव डाला है। उनका शिक्षा दर्शन भारतीय आदर्शवाद और पाश्चात्य प्रयोजनवाद तथा प्रकृतिवाद का सम्मिश्रण था। गाँधीजी राजनेता थे किंतु उनकी राजनीति में नैतिकता का प्रभुत्व था। वह सत्य व अहिंसा के पुजारी थे।

गाँधीजी बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल देते हैं। वह परम्परागत पाठ्य पुस्तकों, पठन विधि इत्यादि के विरुद्ध हैं। वह ऐसी शिक्षा के विरुद्ध है जो ग्रामीण युवकों को खींचकर शहरों की तरफ लायें। वह दस्तकारी पर बाल देते हैं। वह दस्तकारी केन्द्रित शिक्षा पर बल देते हैं किन्तु वह बाल केन्द्रित भी है। जिसका उद्देश्य बालक का विकास है।

गाँधी जी के विचारों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हैं–

1. परम्परागत शिक्षा का विरोध।
2. केवल पाठ्यक्रम की शिक्षा से छुटकारा।
3. प्राकृतिक सुन्दरताओं की अनुभूति शिक्षा में महत्वपूर्ण समझना।
4. बाल केन्द्रित शिक्षा।
5. कार्य करके सीखने पर बल।
6. दमनात्मक अनुशासन का विरोध।
7. सादा जीवन उच्च विचार को महत्व।

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा :–

शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये लिखा "शिक्षा से मेरा अभिप्राय उन सर्वश्रेष्ठ गुणों का प्रकटीकरण है जो बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में विद्यालय है। उनके अनुसार उनका कहना है, ''सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों की आध्यात्मिक मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों को अभिव्यक्त एवं प्रोत्साहित करें।''

शिक्षा के उद्देश्य :–

गाँधी जी ने शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विकसित किया है–तात्कालिक और अंतिम।

क. तात्कालिक उद्देश्य :–

1. गाँधी जी के अनुसार बालक को बड़े होने पर जीविका उर्पाजन करने के योग्य बनाना।

2. बालक को पवित्रता प्रदान करके उसके चरित्र का निर्माण करना।

3. बालक को अपने व्यवहार में अपनी संस्कृति को व्यक्त करने का प्रशिक्षण देना।

4. बालक की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके उसके व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास करना।

5. व्यक्ति को सब प्रकार की दासता से मुक्त करके उसकी आत्मा को उच्चतर जीवन की ओर ले जाना।

ब. अंतिम उद्देश्य :–

गाँधी जी ने शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है। ''अन्तिम वास्तविकता का अनुभव, ईश्वर और आत्मानुभूति का ज्ञान है।''

पाठ्यक्रम :–

गाँधी जी ने अपने बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नांकित विषयों को स्थान दिया है–

1. आधारभूत शिल्प – कृषि, कताई, बुनाई, धातु का काम, लकड़ी का काम आदि।

2. मातृ भाषा, राष्ट्रभाषा

3. गणित

4. सामान्य विज्ञान जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, शरीर विज्ञान आदि।

5. कला – ड्राइंग और संगीत

6. सामाजिक अध्ययन– इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र

7. हिन्दी – जहाँ यह मातृभाषा न हो।

8. शारीरिक शिक्षा – खेलकूद व व्यायाम

शिक्षण विधियाँ :–

गाँधी जी ने शिक्षण के लिये रचनात्मक विधि, संगीत विधि, मौखिक विधि, सह सम्बंध विधि, क्रिया विधि, अनुकरण विधि, स्वाध्याय विधि को अपनाने पर बल दिया। इनके अतिरिक्त श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की आवश्यकता के प्रयोग पर बल दिया।

शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय

उनके अनुसार शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम न्याय, सहानुभूति एवं श्रम का पुजारी होना चाहिए। उसे चरित्रवान, कत्वर्यनिष्ठ धार्मिक, संयमी विषय का पूर्ण ज्ञाता जिज्ञासू होना चाहिए तभी वह छात्रों का आदर्श स्वयं अनुकरणीय हो सकता है।

गाँधी जी भी बाल केन्द्रित शिक्षा के समर्थक थे इसलिये उन्होंने शिक्षकों को बाल मनोविज्ञान के पूर्ण ज्ञाता होने की अपेक्षा की। वे छात्रों को विद्या अध्ययन के लिए तो कहते ही हैं साथ में चरित्रवान बनाने का सुझाव देते हैं।

उनके अनुसार विद्यालय शहरों एवं गाँवों दोनों ही स्थानों पर खोले जाये और उन्हें सामाजिक केन्द्र के रूप में स्वीकार किया। विद्यालय राज्य की ओर खोले जाय लेकिन उनमें समाज का योगदान होना चाहिए।

शिक्षा में गाँधी जी का योगदान :–

गाँधी जी का शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि उनके द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा आज भी भारत में प्रचलित है। उन्होंने हाथ, हृदय और मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने की योजना विकसित थी। उन्होंने समाज को उन्नत बनाने के लिये सामाजिक वातावरण को शिक्षा का माध्यम बनाया।

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये हस्त कौशलों पर आधारित पाठ्यचर्या का निर्माण किया। उन्होंने करके सीखने पर बल दिया। अध्यापक से यह अपेक्षा की बच्चों के साथ प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर उनका मार्गदर्शन करें। इसके अतिरिक्त जन शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा और धार्मिक शिक्षा के विषय में विचार व्यक्त किये। उनके शैक्षिक विचारों के सम्बंध में एम.एस. पटेल ने कहा कि ''गाँधी जी का शिक्षा दर्शन योजना में प्रकृतिवादी, उद्देश्यों में आदर्शवाद और कार्य पद्धति में व्यावहारिकतावादी है।''

श्री अरविन्द घोष के शिक्षा सम्बंधी विचार

जीवन परिचय :–

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त 1972 ई. में कलकत्ता के घोष–परिवार में हुआ था। उनके पति का नाम डॉ. कृष्णघन घोष और माता का नाम स्वर्णलता देवी था। श्री

अरविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा दार्जिलिंग के लोरेटो कान्वेंट में हुई। तत्पश्चात् उनको शिक्षा प्रदान करने के लिये इग्लैंड भेजा गया।

भारत आकर उन्होंने बडौदा राज्य की सेवा करना स्वीकार किया। यहाँ कुछ समय तक उन्होंने लगान बंदोबस्त, स्टाम्प और रेवेन्यू विभाग आदि में कार्य किया। बड़ौदा में ही इनका विवाह हुआ। उन्होंने 1905 से 1910 तक सक्रिय राजनीति में भाग लिया।

श्री अरविन्द 1910 ई. में पाण्डिचेरी गया पाण्डिचेरी पहुंच कर अरविन्द योग साधना में लीन हो गये। उन्होंने अपने अंतिम दिन पाण्डिचेरी के आश्रम में व्यतीत किये। इस महान ऋषि, साधक तथा शिक्षा शास्त्री ने 2 दिसम्बर 1950 को इस संसार का त्याग किया।

जीवन दर्शन

श्री अरविन्द का दर्शन श्रेयवादी (Agnostic) है। वे विकास में विश्वास करते हैं उनके विकास का लक्ष्य जगत में व्याप्त दिव्य शक्ति का प्रगतिशील बोध है। उनके विचार से इस विश्व के सब विकासशील प्राणियों का एक ही प्रयोजन और लक्ष्य है पूर्ण और अखण्ड चेतना की प्राप्ति। चेतना के विकासक्रम की दो विशेषताएँ हैं –

पहली पदार्थ, प्राण, मन और बुद्धि इनका अस्तित्व अलग–अलग नहीं है बल्कि हर एक अनुवर्ती स्तर अपने पूर्ववर्ती स्तर से जुड़ा है।

दूसरी–हर एक उच्च स्तर पर पहुँच कर विकसित चेतना, अपने पूर्ववर्ती और अनुवर्ती स्तरों को अपने ढंग से अपने और अपने नियमों के अनुसार प्रभावित करती है।

श्री अरविन्द का कथन है कि चट्टानों और खनिजों से वनस्पति उत्पन्न हुई, वनस्पति से पशु की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार पशु से मानव का विकास हुआ और मानव से अतिमानव का विकास होता अवश्यम्भावी है।

शिक्षा दर्शन

श्री अरविन्द के अनुसार मन या अन्तःकरण शिक्षक का मुख्य साधन है। वह मस्तिष्क को चार सतहों में विभाजित मानते हैं।

1. **स्मरण शक्ति** – चित्त ही वह है जिससे क्रियाशील स्मरण शक्ति समय पर आवश्यक वस्तु की खोज निकालती है कभी यह चुनाव ठीक वस्तु का होता है। कभी अनावश्यक वस्तुओं का भी चुनाव हो जाता है। श्री अरविन्द के अनुसार चित्त को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह स्वाभाविक रूप से अपने कार्य के लिये यथेष्ट है।

2. **वास्तविक मस्तिष्क या मानस** – मानस का कार्य यह होता है कि वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भेजी गई प्रतिमाओं को ग्रहण करे और उनको विचारों में बदलदे। शिक्षक का यह मुख्य कार्य समझा जाता है कि वह छः ज्ञानेन्द्रियों का उचित उपयोग करना सिखायें और उनमें उस सीमा तक कुशलता प्रदान करने का निर्देशन दे जिस सीमा तक कि उनकी ज्ञानेन्द्रियों में शक्ति और योग्यता हो।

3. <u>बुद्धि मस्तिष्क</u> – इसके द्वारा ही विचार होता है। यह ज्ञान को संगठित करती है और उसमें हेर–फेर करती है। श्री अरविन्द बुद्धि के शिक्षा के लिये बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। वह बुद्धि के एकत्रीकरण, रचना, समन्वयीकरण के गुणों को बुद्धि का दाहिना हाथ मानते हैं। बाँया हाथ बुद्धि के आलोचनात्मक व विश्लेषणात्मक गुण होते हैं यह हाथ केवल सेवक होता है। यह हाथ ज्ञान को केवल छू ही पाता है, जबकि दाहिना हाथ आत्मा की गहराई तक घुसता है।

4. <u>सत्य का सहज ज्ञान बोध</u> – यह बोध अभी पूर्ण विकसित नहीं हुआ है। यह पूर्ण रूप से किसी के भी पास नहीं है लेकिन अपूर्ण एवं क्षणिक प्रकाश के रूप में अनेक के पास है। एक शिक्षक को चाहिए कि वह सहज ज्ञान–शक्ति के विकास का स्वागत करें और प्रोत्साहन दें। शिक्षक को बालक का मार्गदर्शन होना चाहिए और उसका कार्य छात्र के निजी स्वभाव या प्रकृति के अनुसार इसे विकसित करने के लिये सहायता देना ही होना चाहिए।

श्री अरविन्द शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य के अंतःकरण और आत्मा की शक्ति के निर्माण और विकास को मानते हैं। श्री अरविन्द वास्तविक शिक्षा में तीन वस्तुओं को ध्यान में रखने को कहते हैं। यह तीन उनके अनुसार हैं। सार्वलौकिक मस्तिष्क मनुष्य जाति की आत्म तथा इन दोनों के मध्य की एक अन्य शक्ति राष्ट्र का मस्तिष्क।

यूनिट– पंचम

अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ

अरविन्द के अनुसार शिक्षा का अर्थ :–

अरविन्द के शब्दों में ''सूचनाएँ ज्ञान की नीव नहीं हो सकती और केवल सूचनाओं का संकलन शिक्षा नहीं है।'' इस प्रकार शिक्षा केवल ज्ञान देने तक सीमित रह सकती हैं उनके अनुसार "शिक्षा मानव के मस्तिष्क तथा आत्म की शक्तियों का सृजन करती है यह ज्ञान, चरित्र तथा संस्कृति की उन्नति करती है" उनके अनुसार शिक्षा आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली और छात्रों को कर्मशील नागरिक बनाने वाली होनी चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य :–

1. बालक की शारीरिक शुद्धि करना और उसके शरीर का पूर्ण तथा उत्तम विकास करना।

2. बालक की चित्त सम्बंधी क्रियाशीलता को समुन्नत करके उनके अन्तःकरण का विकास करना।

3. बालक की स्नायु–शुद्धि, चित्त शुद्धि करके उसकी इन्द्रियों के उचित प्रयोग का विकास करना।

4. बालक की अभिरुचियों के अनुसार उसकी स्मृति, कल्पना, चिन्तन और निर्णय शक्ति का विकास करके उसका मानसिक विकास करना।

5. बालक को तथ्य संग्रह करने और निष्कर्ष निकालने का प्रशिक्षण देकर उसकी तर्क शक्ति का विकास करना।

शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धांत :–

1. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और शिक्षा का केन्द्र बालक होना चाहिए।

2. शिक्षा का मुख्य आधार ब्रह्मचर्य और शिक्षा के विषय रोचक होने चाहिए।

3. शिक्षा, बालक की मनोवृत्तियों और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के अनुकूल होनी चाहिए।

4. शिक्षा को व्यक्ति में निहित समस्त ज्ञान का उद्घाटन करना चाहिए।

5. शिक्षा को बालक का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक और संवगात्मक विकास करके उसे पूर्ण मानव बनाना चाहिए।

6. शिक्षा को बालक की नैतिकता का विकास करना चाहिए और उसके व्यावहारिक जीवन को सफल बनाना चाहिए।

7. शिक्षा को बालक का मित्र और पथ प्रदर्शक होना चाहिए और उसे बालक की शारीरिक शुद्धि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

8. शिक्षा को व्यक्ति में निहित समस्त शक्तियों का इस प्रकार विकास करना चाहिए कि वह उनसे पूर्ण रूप से लाभान्वित हो।

पाठ्यक्रम :–

श्री अरविन्द ने बालक का नैतिक, भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करने के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के जो विषय निर्धारित किये हैं, वे इस प्रकार हैं–

1. **प्राथमिक शिक्षा** – मातृभाषा अंग्रेजी, फ्रेंच, सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, गणित और चित्रकला।

2. **माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा** – मातृभाषा अंग्रेजी, फ्रेंच, गणित, सामाजिक अध्ययन, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीवन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान और चित्रकला।

3. **विश्वविद्यालय शिक्षा** – भारतीय व पाश्चात्य दर्शन, मनोविज्ञान, रसायन समाज–शास्त्र, सभ्यता का इतिहास, अंग्रेजी साहित्य, गणित, भौतिक शास्त्र, शास्त्र, विज्ञान का इतिहास, फ्रेंच साहित्य, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध, जीवन व विज्ञान और विश्व एकीकरण।
शिक्षण विधियाँ –

श्री अरविन्द शिक्षण की क्रमिक विधि के पक्ष में है। इस विधि में जैसा कि वर्तमान समय में है, बालक को एक समय में अनेक विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती है। इसके अन्तर्गत शिक्षण निम्नलिखित सिद्धांतों से शिक्षा दी जाती है–1. करके सीखना, 2. बालक का सहयोग, 3. बालक की स्वतंत्रता, 4. प्रेम व सहानुभूति का प्रदर्शन, 5. बालक की रुचियों का अध्ययन, 6. शिक्षा का माध्यम–मातृभाषाद्व 7. बालक के निजी प्रयास व निजी अनुभव को प्रोत्साहन, 8. विषयों की प्रकृति के अनुसार बालक की शक्तियों का प्रयोग, 9. वैयक्तिक मित्रता के आधार पर। इस प्रकार उन्हेनि केन्द्रीयकरण विधि, मौखिक, पाठ्य पुस्तक विधि, स्वाध्याय विधि का समर्थन किया।

अरविन्द के अनुसार शिक्षा में अध्यापक शिक्षार्थी एवं शिक्षाशाला

अरविन्द के अनुसार "अध्यापक निदेशक, आज्ञा देने वाला था कार्य कराने वाला न हो कर मार्गदर्शक और सहायक हो" वह एक मित्र, सहायक, पथ प्रदर्शक एवं ज्ञानदाता है जो विद्यार्थी को आत्म निर्भर बनाना है। उसे मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। उसे छात्रों को उनकी अभिरुचियों के अनुकूल शिक्षण करना चाहिए।

अरविन्द जी ने बालकेन्द्रित शिक्षा का समर्थन किया है उसका विकास उसकी रुचि के अनुकूल किया जाय। उनके अनुसार प्रत्येक बालक में एक विशिष्ट प्रतिया, व्यक्तिगत विभिन्नताएं है और अनुकरणशील होता है। इसलिये उनकी अभिरुचियों के अनुकूल शिक्षा हो।

अरविन्द की आश्रम प्रथा के समर्थक थे लेकिन संस्थायें ऐसी हो जहाँ छात्रों के समग्र विकास की उपयुक्त व्यवस्था है।

<u>शिक्षा में अरविन्द का योगदान</u> :–

शिक्षा के सन्दर्भ में अरविन्द द्वारा आधुनिक, व्यापाक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार दिये गये हैं। आध्यात्मिक एकता पर बल, योग विश्वविद्यालय की स्थापना मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना। बालकेन्द्रित शिक्षा का समर्थन, आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम का निर्माण एवं शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण विचार दिये हैं। अरविन्द द्वारा पाण्डचेरी में स्थापित "अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र विश्वविद्यालय है।''

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा सम्बंधी विचार

<u>जीवन परिचय</u> :–

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बंगाल के प्रसिद्ध टैगोर वंश में सन् 1861 ई. में कलकत्ता में हुआ था। टैगोर–परिवार अपनी समृद्धि, कला एवं विद्या के लिये सम्पूर्ण प्रदेश में प्रसिद्ध था। टैगोर को परिवार में ही देशभक्ति, धर्मप्रियता एवं विद्या के गुण प्राप्त हुये। प्रारम्भिक काल में स्कूली शिक्षा में मिले कई अनुभवों से प्रेरणा लेकर आजीवन शिक्षा सुधार को अपना जीवन समर्पित किया एवं आदर्श शिक्षा संस्था शांति–निकेतन की स्थापना की जो कि आज विश्वभारती विश्वविद्यालय के नाम से प्रख्यात् है। टैगोर की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु वे अपने भाई के साथ इंग्लैण्ड गये। 1880 ई. में टैगोर स्वदेश लौटे। उनको विद्यालय की शिक्षा के नाम पर कुछ भी प्राप्त न हुआ।

1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बोलपुर के समीप 'शांति–निकेतन' की स्थापना की। आज इसकी लोकप्रियता भारत के साथ–साथ विदेशों में भी है। शीघ्र ही महान् कवि एवं साहित्यकार के रूप में उनकी ख्याति देश–विदेश में फैल गयी। उनकी विश्व प्रसिद्ध कृति 'गीताजंलि' पर नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

जीवन दर्शन

टैगोर में अनेक ऐसे गुण थे जिसके कारण वे एक महान शिक्षा शास्त्री व साहित्यकार बने। उन्होंने देश सेवा को ग्राम सेवा से जोड़ा। ग्रामीणों पर कृपा करने की अपेक्षा उन्हें उचित सम्मान देना चाहिए एवं जात–पाँत, ऊँच–नीच की खाई पाटना चाहिए। वे ईश्वर को सर्वोच्च मानव मानते थे। वे उच्च धार्मिकता वाले व्यक्ति थे उनका विश्वास सत्यम् शिवम, अद्वैतम् की धारणा में दृढ़ विश्वास था। उनका विश्वास था कि ईश्वर की उपासना मंदिरों व अन्य धार्मिक स्थलों पर करना अनिवार्य नहीं है। वरन् भूमि जोतकर व परिश्रम के कार्य करके की जा सकती है।

शिक्षा दर्शन

टैगोर की पारिवारिक पृष्ठभूमि दर्शन, विज्ञान, कला, संगीत, कविता, सम्पन्नता की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध थी। उनका परिवार विभिन्न सामाजिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों का

केन्द्र था। टैगोर शीघ्रता से किसी भी बात को ग्रहण करने की क्षमता थी जिससे वे महान् शिक्षा शास्त्री व साहित्यकार बने।

टैगोर ने शिक्षा के सिद्धांतों की खोज अपने अनुभव से की है उन्होंन भारतीय शिक्षा में नये प्रयोगों की शुरुआत की। उन्होंने भारतीय व पाश्चात्य विचारों का सम्मिश्रण किया एवं अपने शिक्षा सिद्धांतों की खोज स्वयं की। जिस समय भारत में विदेशी शिक्षा का अंधानुकरण किया जा रहा था उस समय उन्होंने विदशी शिक्षा को पूर्णरूप से अपनाने से मना किया।

टैगोर के सदस्य ने समाज में दया व प्रेम भाव था। वे प्रकृतिवादी थे किंतु उसके उनके स्वयं के सिद्धांत थे वे समाज को आगे बढ़ते देखना चाहते थे। उनके शिक्षा दर्शन में 'रहस्यवाद' के भी दर्शन देखने को मिलते हैं। वे मनुष्य के मूल्यों के गिरने का घोर विरोध करते थे एवं मानव जाति का उद्धार करना चाहते थे वे एक मानवतावादी शिक्षा शास्त्री भी थे।

शिक्षा का अर्थ :–

टैगोर के अनुसार – ''सर्वोत्तम शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।''

शिक्षा के व्यापक अर्थ के अंतर्गत टैगोर ने शिक्षा के प्राचीन भारतीय आदर्श को स्थान दिया है। ''सा विद्या या विमुक्तये'' अर्थात् विद्या वही है जो सारे बंधनों से मुक्त कराती है।

शिक्षा के उद्देश्य :–

टैगोर द्वारा निर्धारित किये जाने वाले शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिये बालक का पूर्ण विकास करना।
2. बालक का वैयक्तिक, व्यावसायिक और सामाजिक विकास करना।
3. बालक के शरीर का स्वस्थ और स्वाभाविक विकास एवं उनमें विभिन्न अंगों और इन्द्रियों को प्रशिक्षित करना।
4. बालक को वास्तविक जीवन की बातों, स्थितियों और पर्यावरण की जानकारी देकर एवं उनसे अनुकूलन कराके, उसके मस्तिष्क का विकास करना।
5. बालक को धैर्य, शांति, आत्म–अनुशासन, आंतरिक स्वतंत्रता आंतरिक शक्ति और आंतरिक ज्ञान के मूल्यों से अवगत कराके, उसका नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना।

शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धांत या आवश्यक तत्व

1. छात्रों में संगीत, अभिनय और चित्रकला की योग्यताओं का विकास किया जाना चाहिए।

2. छात्रों को भारतीय विचारधारा और भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का स्पष्ट ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।

3. छात्रों को उत्तम मानसिक भोजन दिया जाना चाहिए, जिससे उनका विकास विचारों के पर्यावरण में हो।

4. छात्रों को नगर की गंदगी और अनैतिक से दूर प्रकृति के सम्पर्क में रखकर शिक्षा दी जानी चाहिए।

5. शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए और उसे भारत के अतीत एवं भविष्य का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

6. जन साधारण को शिक्षा देने के लिये देशी प्राथमिक विद्यालयों को फिर जीवित किया जाना चाहिए।

7. यथासंभव शिक्षण विधि का आधार—जीवन, प्रकृति और समाज कीवास्तविक परिस्थितियाँ होनी चाहिए।

<u>पाठ्यक्रम</u> :—

उन्होंने ''जीवन की पूर्णता'' को जीवन का लक्ष्य बताया। इस आधार पर उनके विचार हैं कि पाठ्यक्रम बालक के जीवन पूर्ण अनुभवों से सम्बन्धित हो, ज्ञान की जिज्ञासा पूरी करने में समर्थ हो राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधारों पर निर्मित हो। इस सन्दर्भ में भाषा साहित्य, गणित, विज्ञान, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल, कला संगीता नृत्य, चित्रण, भ्रमण, खेल—कूद, व्यायाम समाज और मानव सेवा आदि के समावेश का समर्थन किया।

<u>शिक्षक, विद्यार्थी और विद्यालय</u> :—

उन्होंने शिक्षकों की नितान्त आवश्यकता पर बल दिया उनके अध्यापक को पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होना चाहिए। अध्यापक में सेवा, त्याग, सहयोग, शिक्षण में रुचि, लगन, कर्तव्य परायणता के गुण हो ताकि वह छात्रों का आदर्श बन सके।

टैगोर ने छात्रों के लिये विशेष गुण बताये जैसे व्यवहार में विनम्रता, स्फूर्तिवान, अनुशासित, समाजिकता, साधना आदि। वे उनके व्यक्तित्व का विकास करने के पक्ष में हैं।

उन्होंने प्राचीन गुरुकुल प्रणाली को स्वीकार किया। अर्थात् विद्यालय शान्त वातावरण, प्रकृति की गोद में स्थित हो। प्राइमरी सकेण्ड्री, उच्च, व्यावसायिक एवं कृषि सम्बंधी शिक्षा के अलग—अलग व्यवस्था हो।

टैगोर का शिक्षा में योगदान :–

उन्होंने देश में विश्वभारतीय की स्थापना कर शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया। वे जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, ग्रामीण शिक्षा आदि के समर्थक थे। उनके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम शिक्षण विधि आदि की व्यवस्था वास्तविक जीवन की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करे। टैगोर ने सौन्दर्यबोध की शिक्षा के अन्तर्गत ललित कलाओं को शिक्षा में स्थान दिया। वे रूसों की भांति मुक्त अनुशासन के यत को मानने वाले थे उनके दर्शन पर आदर्शवाद, प्रकृतिवाद यथार्थवाद प्रयोजनवाद एवं मानववाद दर्शनों को प्रभाव है। उनकी प्रबल इच्छा थी कि शिक्षा के द्वारा निरक्षता का निराकरण हो।

शिक्षा का सामाजिक दर्शन शास्त्र

स्वतंत्रता :–

अनुशासन प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज के जीवन के लिये सबसे अमूल्य विधि है। विद्यालय में जितना महत्वपूर्ण स्थान, अनुशासन का है, उतना ही स्वतंत्रता का भी है। बालक को विचार अध्ययन, निरीक्षण आदि की स्वतंत्रता होनी चाहिए, ताकि उसका बौद्धिक विकास हो। उसे खेलकूद और अन्य शारीरिक क्रियाओं की स्वतंत्रता होनी चाहिए, ताकि शिक्षक उनका अवलोकन करके बालक के स्वभाव आदतों, चारित्रिक विशेषताओं आदि से परिचित होकर उसको निर्देशन दे सकें।

ब्राउडी के अनुसार – स्वतंत्रता के अभाव में व्यक्ति की निर्माण करने की शक्ति और संभव कार्यों में साझेदारी सीमित हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति संभव कार्य का शक्तिशाली निर्माता है। उसकी शक्ति को सीमित करना, संभव कार्य को स्वयं व्यक्ति को सीमित करना है।

स्वतंत्रता की अवधारणा :–

स्वंत्रतत्रा शब्द का अंग्रेजी पर्याय लिबर्टी लेटिन भाषा के स्पइमत शब्द से बना है, जिसका अर्थ है–मुक्त या स्वतंत्र या बंधनों का अभाव। यदि शाब्दिक अर्थ को मानकर चलें तो स्वतंत्रता का अर्थ है – इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता परंतु स्वतंत्रता का यह अर्थ अनुपयुक्त है, क्योंकि सभ्य समाज में व्यक्ति को मनमाने ढंग से कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती है। ऐसा करने पर समाज में जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली स्थिति उत्पन्न हो जायेंगी।

परिभाषाएं

मेकेन्जी – स्वतंत्रता सभी प्रकार के प्रतिबंधों का अभाव नहीं है, वरन् अनुचित प्रतिबंधों के स्थान पर उचित प्रतिबंधों की व्यवस्था है।

जी.डी.एच. कोल – बिना किसी बाधा के अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने के अधिकार का नाम स्वतंत्रता है।

टी.एच.ग्रीन – स्वतंत्रता उन कार्यों को करने या उन वस्तुओं के उपयोग करने की शक्ति है, जो कि करने या उपभोग योग्य है।

स्वतंत्रता के सम्बंध में विभिन्न दार्शनिकों के विचार

स्वतंत्रता के संबंध में दार्शनिकों के विचारों में मतभेद है। एक तो विचार यह है कि व्यक्ति कुछ संस्कारों के साथ उत्पन्न होता है। यह संस्कार ही इसके जीवन कार्य निर्धारित करते हैं। अतएव व्यक्ति का जीवन उसके उत्पन्न होने के समय निर्धारित हो जाता है। व्यक्ति इन संस्कारों के संदर्भ में ही स्वतंत्र समझा जाता है। इस विचार धारा के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने कार्य का उत्तरदायी नहीं है। भाग्यवादी भाग्य को ही सब कार्य का उत्तरदायी मानते हैं।

अरस्तु का विचार था कि बालक ऐसी प्रवृत्तियों के साथ उत्पन्न होता है जो न अच्छी है न बुरी। वह तो ऐसा कच्चा माल है, जिन्हें प्रशिक्षण द्वारा अच्छा या बुरा कुछ भी बताया जा सकता है। उसका विचार था कि नैतिक प्रशिक्षण के लिए व्यक्ति को शक्ति द्वारा अच्छे कार्य करने को बाध्य करना चाहिए। शक्ति का प्रयोग उस समय तक होना चाहिए। शक्ति का प्रयोग उस समय तक होना चाहिए, जब तक कि अच्छी आदतें न बन जायें।

रूसो महोदय शक्ति केप्रयोग को अच्छा नहीं समझते। वह कहते हैं कि बालक को स्वतंत्र छोड़ दो। उसे कोई आदेश न दो। समाज व्यक्ति की स्वतंत्रता पर नियंत्रण लगा देता है। बालक के नैतिक विकास के लिए इन नियंत्रणों को दूर करना आवश्यक है। कांट का कहना है कि सब नैतिक कार्य स्वतंत्र कार्य होते हैं। वह किसी बाहरी कर्ता द्वारा नहीं निर्धारित होते हैं। जब व्यक्ति नैतिकता से कार्य करता है तो कर्ता अपनी तार्किक प्रकृति द्वारा ही निर्धारित होता है। उसके कार्य स्वयं निर्धारित होते हैं। अतएव वह स्वतंत्र होते हैं। कांट मानते हैं कि जब व्यक्ति नैतिक कार्य करते हैं तो वह एक ऐसा नियम मानते हैं जो स्वयं उनसे ही प्राप्त होता है।

शिक्षा देने में कांट कहते हैं कि बालक का प्रारम्भिक प्रशिक्षण ऐसा होना चाहिए कि इसमें उचित आदतों पूर्ण रूप से आज्ञा के द्वारा विकसित की जायें। फिर धीरे–धीरे उसे स्वतंत्रता की ओर ले जाया जाये।

ड्र्यूवी के कारण नैतिकता सामाजिक है। हम कहते हैं उसके लिये उत्तरदायी ठहराये जाते हैं और यदि दूसरे हमारे कार्य को पसंद नहीं करते तो वह अपनी अस्वीकृति दिखाते है। इस प्रकार समाज हमारे कार्य और विश्वास पर प्रभाव डालता है।

प्रजातंत्र :–

अब्रहम लिंगन का प्रसिद्ध कथन ''जनतंत्र जनता की, जनता के द्वारा तथा जनता के लिए सरकार है।''

प्रजातंत्र या लोकतंत्र का अर्थ जनता का शासन है। लोकतंत्र अंग्रेजी शब्द डेमोक्रेसी का हिन्दी अनुवाद है। डेमोक्रेसी शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों डेमोस तथा क्रेशिया का अर्थ है शक्ति। इस प्रकार डेमोक्रेसी का अर्थ है– जनता की शक्ति। अतः लोकतंत्र से तात्पर्य

इस शासन प्रणाली से है, जिसमें शासन शक्ति एक शक्ति या वर्ग विशेष में निहित न रहकर जनसाधारण में निहित होती है।

सीले के अनुसार – लोकतंत्रीय शासन वह है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भाग होता है।

ब्राइस के अनुसार – लोकतंत्र शासन का वह रूप है जिसमें राज्य के शासन की शक्ति किसी वर्ग विशेष या वर्गों में निहित न होकर सम्पूर्ण समाज के सदस्यों में निहित होती है।

डायसी के अनुसार – लोकतंत्र शासन का वह रूप है जिसमें शासक समुदाय सम्पूर्ण राष्ट्र का अपेक्षाकृत एक बड़ा भाग है।

लोकतंत्र की अवधारणाएँ एवं सिद्धांत :–

हॉपकिन्स ने लोकतंत्रीय जीवन शैली की निम्नलिखित अवधारणाएँ एवं सिद्धांत बताए हैं।

1. प्रत्येक व्यक्ति मानव प्राणी के रूप में अपना महत्व रखता है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की महत्ता तथा क्षमताओं में व्याख्या।

2. प्रत्येक मानव प्राणी सीखने की क्षमता रखता है।

3. प्रत्येक मानव स्वयं में साध्य है वह साधन नहीं है।

4. लोकतंत्र वैयक्तिक अवसर पर आधारित है। साथ ही वह वैयक्तिक दायित्व पर आधारित है।

5. लोकतंत्र मौलिक नैतिकता पर आधारित है।

6. लोकतंत्र जीवित व्यक्ति की सम्प्रभुता में आस्था रखता है।

7. लोकतंत्र इस तथ्य पर आधारित है कि जीवन यापन की प्रक्रिया पारस्परिक है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिलजुल कर कार्य करता है।

8. लोकतंत्र न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व पर आधारित है।

9. लोकतंत्र वैयक्तिकता को आदर एवं महत्व प्रदान करता है।

10. लोकतंत्र परिवर्तन में आस्था रखता है। परंतु वह परिवर्तन को संवैधानिक एवं शांतिपूर्ण उपायों के माध्यम से लाने पर बल देता है।

लोकतंत्रीय शिक्षा के उद्देश्य

ड्यूवी के अनुसार लोगों को तैयार करना शिक्षा का कार्य है। अतः यह प्रश्न उठता है कि लोकतंत्र में लोगों को किस प्रकार की शिक्षा दी जाय। लोकतंत्रीय शिक्षा के कुछ उद्देश्य होने चाहिए, जैसे–1.सामान्य उद्देश्य, 2. अनिवार्य उद्देश्य।

सामान्य उद्देश्य :–

1. प्रेम और सहयोग के आधार पर परिवार और समाज उपलब्ध सदस्यता का विकास।

2. व्यावसायिक कुशलता और व्यावसायिक नैतिकता का विकास।

3. अवकाश प्रदान करने की क्षमता और उसे मनोरंजन तथा आत्म उन्नति के लिए लाभप्रद ढंग से प्रयोग करने का प्रशिक्षण।

4. शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति।

5. मस्तिष्क और बुद्धि का प्रशिक्षण।

6. चरित्र व अनुशासन का विकास।

7. विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व का प्रशिक्षण।

2. अनिवार्य उद्देश्य :–

1. समविकसित व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का विकास – आज का संसार संघर्षो और कटुताओं से भरा हुआ है। ये दोनों लोकतंत्र और मानव के लिए संकट का कारण बन गये हैं। अतः शिक्षा का सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का विकास करना चाहिए।

2. व्यक्ति की आर्थिक सम्पन्नता – लोकतंत्र की सफलता, व्यक्तियों की आर्थिक सम्पन्नता पर निर्भर है। इसका कारण यह है कि आर्थिक सम्पन्नता न होने पर वे अपने कर्तव्य से विमुख हो सकते हैं।

3. व्यक्ति की रुचियों का विकास – हरबार्ट ने बहुमुखी रुचियों के विकास पर बल दिया है। बालक जितनी ही अधिक उपयुक्त और श्रेष्ठ रुचियां होगी, उसे उतने ही अधिक अवसर जीवन काल में और उसक बाद सुखी कुशल और संतुलित जीवन व्यतीत करने के मौके मिलेंगे।

4. अच्छी आदतों का निर्माण – समाज के नागरिकों में अच्छी आदतों का निर्माण किया जाना चाहिए। आदतें ही गरीबी या अमीरी, परिश्रम या आलस्य अच्छे या बुरे कार्यों की पहचान कराती है।

5. सामाजिक दृष्टिकोण का विकास – लोकतंत्र में शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है–व्यक्ति में सामाजिक दृष्टिकोण का विकास करना। इस उद्देश्य में सामाजिक समझदारी सामाजिक रुचियाँ सामाजिक प्राणी बनने की भावना, सहयोग और सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्नों का निर्णय करने की योग्यता आती है।

6. कुशलता की प्राप्ति – प्रजातंत्र के लिए शिक्षा देने के समय कुशलता की प्राप्ति का ध्येय बनाया जाना चाहिए।

7. <u>नागरिकता का प्रशिक्षण</u> – प्रजातंत्र की शिक्षा मुख्य उद्देश्य लोगों को नागरिकता का प्रशिक्षण देना है।

8. <u>उच्च लक्षणों के लिए व्यक्ति व समाज का निर्माण</u> – लोकतंत्र में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य के महत्व को अमरीकी शिक्षा के 35वें बुलेटिन में इस प्रकार व्यक्त किया गया है– लोकतंत्र में शिक्षा की प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञान, रुचियों, आदर्शो, आदतों और शक्तियों का विकास करना चाहिए जिससे वह अपना उचित स्थान प्राप्त करें और इस स्थान का प्रयोग स्वयं और समाज दोनों को उच्च लक्ष्यों की और जाने के लिये करे।

उपरोक्त जनतांत्रिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कोठारी आयोग ने उत्पादन में वृद्धि करना, सामाजिक राष्ट्रीय एकता को प्राप्त करना, आधुनीकरण की प्रक्रिया की गति तीव्र करना और सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों का विकास कर शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में साधन माना।

<u>शैक्षिक अवसरों की समानता</u> :–

शैक्षिक अवसरों की समानता की चर्चा आजकल शिक्षा शास्त्र में बहुत अधिक होती है। शिक्षा के अवसर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार मिलने चाहिए।

<u>पृष्ठभूमि</u> :–

समानता की धारणा जनतंत्रीय धारणा है। जनतंत्र स्वतंत्रय, समानता और शांति के तरीकों में विश्वास करता है। युद्ध और राजनैतिक या अन्य प्रकार के तनावों के मध्य समाज की प्रगति नहीं हो सकती। जनतंत्र का यह विश्वास है कि पारस्परिक द्वेष, संघर्ष व तनाव की अवस्थाएँ शांति पूर्ण ढंग से सुलझाई जा सकती हैं। युद्ध की अपेक्षा शांति की विजय अधिक चिर स्थायी है। इसमें जनतंत्र का पूर्ण विश्वास है।

स्वतंत्रता और समानता के संबंध में भ्रमपूर्ण विचार होने के कारण लोग बहुधा उनका गलत मतलब निकालते हैं और उनका दुरुपयोग करते हैं। इन दोनों का अर्थ लोग अपने स्वार्थवश गलत लगा बैठते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हम स्वयं अपने देश में ही देख रहे है कि स्वतंत्रता का कितना गलत अर्थ लगाया जा रहा है। और उसका कितना दुरुपयोग हो रहा है। इसी प्रकार का भ्रम समानता के संबंध में भी है और लोग इसका आशय अधिकारों और अवसरों तथा सुविधाओं के बराबर बाँटने से लगाते हैं चाहे कोई उनका लाभ उठा सके या नहीं। सब मनुष्यों में एक भी शक्ति नहीं होती और सब लोग अवसरों व सुविधाओं से बराबर लाभ नहीं उठा सकतें। समानता का आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उतनी सुविधा या अवसर दिये जाएँ जिनका वह लाभ उठा सकें और यदि वह उनसे लाभ न उठा सके तो उसे वे उतनी मात्रा में न दिये जायँ, समानता का अर्थ सबके लिए समान नीति से है, सबको समान बनाने से नहीं।

भारत सरकार ने असमानता का अस्तित्व समाप्त करने के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की। इनमें से उल्लेखनीय थी। निम्न जातियों के व्यक्तियों के लिए कॉलेज स्तर तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, उनके लिए व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन की सुविधा और उनके लिए एक निश्चित प्रतिशत में सरकारी पदों की सुरक्षा। इस नीति के

अन्तर्गत कम आय वाले वर्गों की दशा में सुधार किया जा रहा है। और भूमि सुधार अधिनियम के अन्तर्गत भूमिहीनों को भूमि प्रदान की जा रही है। इस कार्य में आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन ने अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस समय वास्तविक स्थित यह है कि भारतीय संविधान ने जाति, लिंग, धर्म आदि के आधार पर स्वीकृत असमानता को समाप्त कर दिया है, सब शिक्षा संस्थाओं के द्वार सबके लिए किसी भेदभाव के बिना खोल दिये हैं और प्रत्येक व्यक्ति को अवसर की समानता प्रदान की है।

शिक्षा में समानता के सूचक

1. **अधिगम की समानता** – इसका सम्बंध प्रवेश के अवसर से सम्बंध है। योग्यता को छोड़कर कोई अन्य कसौटी प्रवेश के लिए नहीं होनी चाहिए। जाति,धर्म इसमें बाधक न हीं। कुछ समय पहले भारतीय समाज में स्त्रियों एवं शुद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था।

2. **उत्तर जीवितग की समानता** – विद्यालय में प्रवेश में ही समानता न हो वरन् समान पढ़ाई छोड़ देते हैं यह असमानता है। विद्यालय छोड़ न दे, इसके लिए भी अनुसूचित जाति के बच्चे बीच में ही छात्र स्कूल में बना रहे, वह अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

3. **स्तर की समानता** –एक निश्चित स्तर तक सभी बालक बालिकाओं का बिना किसी भेदभाव के अनिवार्य शिक्षा मिले। निर्धन बालकों को विशेष सुविधा दी जाया एक स्तर तक अनिवार्य निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो।

4. **परिणाम की समानता** – स्कूल छोड़ने के बाद प्रत्येक बच्चे को शिक्षा के आधार पर जीवन बिताने के समान अवसर सुलभ हों। यदि किसी वर्ग विशेष को अवसर की विषमता नजर आयें तो उसे विशेष सुविधा देकर उसके लिए समान अवसर की सुलभता निश्चित की जाया इसी सूचक के अंतर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े वर्ग के लिए नौकरियों में आरक्षता की व्यवस्था की संकलना की जाती है।

उपर्युक्त चारों सूचकों में से किसी समाज में चारो, किसी में कुछ कम तोकिसी में कुछ अधिक की उपस्थिति दिखाई पड़ती है।

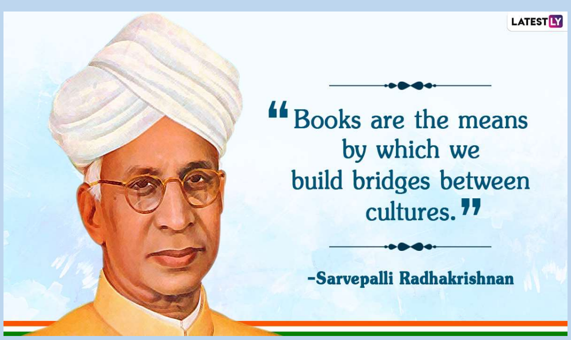

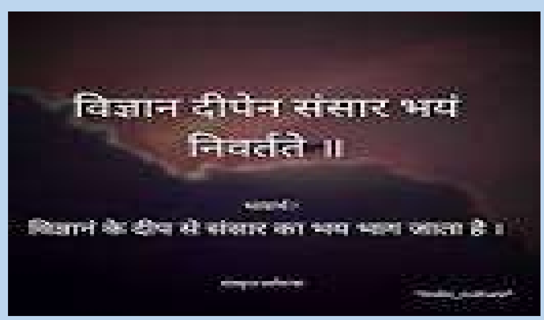

Center for Distance Learning & Continuing Education

MAHATMA GANDHI CHITRAKOOT GRAMODAYA VISHWAVIDYALAYA

Chitrakoot, Satna (M.P.) 485334

E-mail : directordistancemgcgv@gmail.com